झुकाव का परीक्षण

(जगदीश प्रसाद मण्डल जी की काव्यधारा)

(शोधपरक संकलन एवं विश्लेषण)

झुकाव का परीक्षण

(जगदीश प्रसाद मण्डल जी की काव्यधारा)

(शोधपरक संकलन एवं विश्लेषण)

डॉ. उमेश मण्डल

हिंदी अनुवाद

पल्लवी मण्डल

पल्लवी प्रकाशन
बेरमा/निर्मली

JHUKAV KA PAREEKSHAN

Hindi Translation of Jhukauk Pareekshan
A Research-Based Compilation and Analysis of the Poetic Corpus of Shri Jagdish Prasad Mandal
Original Maithili text compiled and analysed by Dr Umesh Mandal
Translated into Hindi by Pallavi Mandal

Jhukav Ka Pareekshan is Pallavi Mandal’s Hindi translation of Dr Umesh Mandal’s Maithili work Jhukauk Pareekshan. Originally published in Maithili in 2023 and presented here in Hindi in 2026, the book is a research-based analytical study of the poetic orientation of Shri Jagdish Prasad Mandal, a deeply socially grounded voice in contemporary Maithili literature. It examines the inner direction, value-consciousness and creative impulse that shape Mandal’s twelve poetry collections.

Dr Umesh Mandal studies Mandal’s poetry in relation to rural Mithila, agrarian life, folk speech, social struggle, ethical responsibility and ordinary human experience. Pallavi Mandal’s Hindi translation brings this critical study to a wider Hindi readership while preserving the literary, social and folk-realist spirit of the original Maithili text. Written with critical seriousness and close textual attention, the book presents Mandal’s poetry as a living record of people, labour, memory, suffering, resistance and hope, and as a humane, socially conscious contribution to modern Maithili poetry.

Published by: Pallavi Prakashan
Tulsi Bhawan, Nehru Marg, Ward No. 06, Nirmali, District: Supaul, Bihar: 847452

First Edition: 2026
ISBN: 978-93-48865-58-8
Price: 300/-
Copyright: © Publisher

Printed by: Manav Art (Pallavi Prakashan)
Typesetting: Pallavi Mandal
Cover Design: Mrs. Poonam Mandal, Nirmali, Supaul, Bihar- 847452

Website: http://pallavipublication.blogspot.com
Email: pallavi.publication.nirmali@gmail.com
Mobile: +91 99316 54742, +91 62006 35563
Font Source: Google Fonts

All rights reserved. No part of this book may be reproduced, distributed, transmitted, adapted, paraphrased, stored in a retrieval system, or processed in any form or by any means, including electronic, mechanical, digital, or artificial intelligence systems, without the prior written permission of the copyright holder or the publisher.

विषय-क्रम

अनुवादक के दो शब्द

भूमिका

प्रथम खंड: अवधारणा, पद्धति और अध्ययन-आधार

1 'झुकाव' शब्द का आशय, सीमा तथा आलोचनात्मक आधार

2 अध्ययन के स्रोत, पद्धति और आलोचनात्मक आधारभूमि

द्वितीय खंड: जीवन, समाज, विचार और साहित्यिक झुकाव

3 मण्डल जी का जीवन-झुकाव: निजता से समाज की ओर

4 मण्डल जी का सामाजिक झुकाव: गाँव, किसान, श्रम और लोक-न्याय

5 मण्डल जी का वैचारिक झुकाव: श्रम, विवेक, आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय

6 मण्डल जी का साहित्यिक झुकाव: गद्य से पद्य तक लोक-यथार्थ का प्रवाह

तृतीय खंड: काव्य-संसार का विषयगत और संवेदनात्मक झुकाव

7 काव्य-संसार का आरंभिक रूप: जीवनानुभव से उपजी कविता

8 रचना का झुकाव: मिथिला की मिट्टी, पानी, भूगोल और प्रकृति की ओर

9 रचना का झुकाव: किसान, मजदूर और श्रमशील मनुष्य की ओर

10 रचना का झुकाव: समाज की दरार, असंतुलन और प्रतिरोध की ओर

11 रचना का झुकाव: परिवार, स्त्री-संवेदना और लोक-संस्कार की ओर

12 रचना का झुकाव: समय, मौसम और जीवन-परीक्षण की ओर

13 रचना का झुकाव: जीवन-जिजीविषा, मृत्यु-बोध और नैतिक साहस की ओर

चतुर्थ खंड: भाषा, शिल्प और प्रतीक-योजना का झुकाव

14 लोकभाषा, ध्वनि और आवृत्तिमय शिल्प

15 प्रतीक-संसार और बिंब-योजना

16 काव्य-स्वर, संबोधन और संवादधर्मी संरचना

पंचम खंड: समाहार, परंपरा और मूल्यांकन

17 मण्डल जी का जीवन-झुकाव और रचनात्मक झुकाव: साम्य और अन्तःसंबंध

18 मैथिली काव्य-परंपरा में मण्डल जी के झुकाव की विशिष्टता

उपसंहार

परिशिष्ट

काव्य-पुस्तकों के संकेत, स्रोत और लेखन-क्रम

अनुवादक के दो शब्द

भारत की बहुभाषिक साहित्यिक परंपरा में अनुवाद ने सदैव भाषाओं और साहित्यिक संस्कृतियों के बीच सेतु का कार्य किया है। एक भाषा की रचना जब दूसरी भाषा में पहुँचती है, तब केवल शब्द नहीं बदलते, उसके साथ एक समाज का अनुभव, उसकी संस्कृति, संवेदना और वैचारिक चेतना भी नये पाठक-वर्ग तक पहुँचती है। इस अर्थ में अनुवाद भाषा-परिवर्तन भर नहीं, साहित्यिक और सांस्कृतिक संवाद का महत्त्वपूर्ण माध्यम है।

मैथिली और हिंदी का संबंध भाषिक निकटता के साथ-साथ सांस्कृतिक आत्मीयता का भी संबंध है। मिथिला का लोकजीवन, सामाजिक अनुभव और साहित्यिक चेतना दोनों भाषाओं के पाठकों को अनेक स्तरों पर जोड़ते हैं। फिर भी प्रत्येक भाषा का अपना स्वभाव, अपनी लय और अभिव्यक्ति की अपनी आंतरिक संरचना होती है। इसलिए मैथिली से हिंदी में अनुवाद करते समय निकटता जितनी सहायक होती है, उतनी ही सावधानी भी अपेक्षित रहती है। मूल रचना का भाव, विचार और सांस्कृतिक स्वर सुरक्षित रहे तथा हिंदी पाठक के लिए अभिव्यक्ति सहज और स्वाभाविक बने, यही अनुवाद की वास्तविक कसौटी है।

इससे पूर्व मुझे श्री जगदीश प्रसाद मण्डल की पंद्रह चयनित मैथिली कहानियों के हिंदी रूपांतर 'प्रतिनिधि कहानियाँ' तथा उनके उपन्यास 'आमों का बाग़' के अनुवाद का अवसर मिला है। कथा और उपन्यास के अनुवाद में पात्र, संवाद, ग्रामीण परिवेश और लोक-संवेदना को हिंदी में स्वाभाविक रूप देने की चुनौती सामने थी। 'झुकाव का परीक्षण' के साथ मेरा अनुवाद-अनुभव एक नये क्षेत्र में प्रवेश करता है, क्योंकि यहाँ विषय सृजनात्मक कथा-साहित्य नहीं, शोधपरक और विश्लेषणात्मक आलोचनात्मक गद्य है।

साहित्य में समीक्षा और आलोचना की भूमिका केवल किसी रचना के

गुण-दोष बताने तक सीमित नहीं होती। गंभीर आलोचना रचना के भीतर सक्रिय जीवन-दृष्टि, संवेदना, सामाजिक संदर्भ, भाषा और मूल्य-बोध को पहचानती है तथा पाठक के सामने उसे नये अर्थों में खोलती है। विशेष रूप से विश्लेषणपरक आलोचना किसी लेखक के साहित्य को उसके व्यापक रचनात्मक संदर्भ में समझने की दृष्टि प्रदान करती है। 'झुकाव का परीक्षण' इसी प्रकृति की कृति है। यह श्री जगदीश प्रसाद मण्डल की कविताओं को अलग-अलग काव्य-पुस्तकों के परिचय तक सीमित न रखकर उनके काव्य-संसार की उस अन्तर्धारा को पहचानने का प्रयास करती है, जो मिथिला की मिट्टी-पानी, किसान, श्रम, परिवार, सामाजिक विषमता, लोक-संस्कार, मानवीय विवेक और जीवन की गरिमा से जुड़ी है।

डॉ. उमेश मण्डल की आलोचनात्मक दृष्टि की विशेषता यह है कि वे रचना को उसके जीवन-संदर्भ से जोड़ते हुए भी जीवन को रचना पर आरोपित नहीं करते। उनके अध्ययन में रचनाकार का जीवन, सामाजिक अनुभव, विचार, भाषा, प्रतीक, विषय और मूल्य-दृष्टि परस्पर संबद्ध रूप में सामने आते हैं। इसी कारण यह कृति केवल सामग्री-संग्रह या काव्य-पुस्तकों का परिचय नहीं रह जाती, बल्कि एक सुविचारित आलोचनात्मक पद्धति विकसित करती है। दीर्घकालीन अध्ययन, शोध-अनुशासन, पीएच.डी. के दौरान विकसित गंभीर अध्ययन-दृष्टि और निरंतर आलोचनात्मक साधना ने उनकी दृष्टि को जो परिपक्वता दी है, उसका प्रभाव इस पुस्तक की संरचना, विश्लेषण और निष्कर्षों में स्पष्ट दिखाई देता है।

श्री जगदीश प्रसाद मण्डल का साहित्यिक संसार अत्यंत विस्तृत और बहुआयामी है। उनकी रचनाओं में गाँव, किसान, श्रमशील मनुष्य, परिवार, सामाजिक विषमता, लोक-संस्कार, संघर्ष और मानवीय विवेक बार-बार उपस्थित होते हैं। उनकी कविता भी इसी जीवनानुभव से निर्मित होती है। 'झुकाव का परीक्षण' का महत्त्व इस बात में है कि यह उनके काव्य में उपस्थित तमाम विविध पक्षों को अलग-अलग विषयों के रूप में नहीं, एक समग्र रचनात्मक दृष्टि के परस्पर संबद्ध रूपों में देखने का प्रयास करती है। इससे उनके काव्य-संसार की आंतरिक दिशा और उसका सामाजिक तथा मानवीय आधार अधिक स्पष्ट होकर सामने आता है।

मैथिली आलोचना-साहित्य में इस पुस्तक का महत्त्व इसकी अध्ययन-पद्धति में भी निहित है। इसमें काव्य-पुस्तकों का क्रमिक परिचय देने के स्थान पर प्रवृत्ति, जीवन-दृष्टि, भाषिक स्वभाव, प्रतीक-योजना और मूल्य-बोध को अध्ययन का आधार बनाया गया है। इस प्रकार यह कृति पाठक को कविता के विषय से आगे उसके जीवन-स्रोत और रचनात्मक अभिप्राय तक पहुँचने का अवसर देती है। मुझे लगा कि इस तरह का अध्ययन केवल मैथिली के पाठकों तक सीमित नहीं रहना चाहिए। हिंदी के विद्यार्थियों, शोधार्थियों, अध्यापकों और साहित्य के गंभीर पाठकों तक इसका पहुँचना भी आवश्यक है। हिंदी अनुवाद का औचित्य मेरे लिए इसी आवश्यकता में निहित है।

आलोचनात्मक गद्य का अनुवाद अपनी अलग कठिनाइयाँ लेकर आता है। कथा में प्रसंग और संवाद अर्थ को सहारा देते हैं, पर आलोचनात्मक गद्य में कई बार एक शब्द ही पूरी अवधारणा का आधार होता है। शब्द बदलने से तर्क की दिशा बदल सकती है और वाक्य-संरचना में असावधानी लेखक के निष्कर्ष को कमजोर कर सकती है। इसलिए इस पुस्तक का अनुवाद करते समय मेरा प्रयास रहा है कि मूल लेखक की वैचारिक दृष्टि, विश्लेषण का क्रम और आलोचनात्मक स्वर सुरक्षित रहे। जहाँ मूल काव्य-पुस्तकों के शीर्षक, लोक-शब्द अथवा सांस्कृतिक पहचान से जुड़े प्रयोग आये हैं, वहाँ उनके मूल स्वरूप और अर्थ-संदर्भ को यथासंभव सुरक्षित रखा गया है।

अनुवाद के दौरान मेरे सामने तीन बातें निरंतर रही हैं, मूल के प्रति निष्ठा, हिंदी की सहजता और पाठ की पठनीयता। शब्दशः अनुवाद कई स्थानों पर विचार को बोझिल बना सकता था, जबकि अत्यधिक स्वतंत्रता मूल की वैचारिक संरचना को प्रभावित कर सकती थी। इसलिए प्रयास यह रहा है कि हिंदी का वाक्य स्वाभाविक और प्रवाहपूर्ण हो, किंतु मूल मैथिली पाठ का अर्थ, तर्क और भाव सुरक्षित रहें। जहाँ आलोचनात्मक भाषा की गंभीरता आवश्यक थी, वहाँ उसे बनाये रखा गया है और जहाँ विचार को सरल तथा स्पष्ट रूप में व्यक्त किया जा सकता था, वहाँ अनावश्यक जटिलता से बचा गया है।

मुझे विश्वास है कि यह हिंदी अनुवाद विद्यार्थियों और शोधार्थियों को श्री जगदीश प्रसाद मण्डल के काव्य-संसार से परिचित कराने के साथ-साथ साहित्य के विश्लेषण की एक व्यवस्थित पद्धति से भी परिचित कराएगा।

साहित्य-रसिक पाठकों के लिए यह कविता, जीवन और समाज के अंतर्संबंध को समझने का अवसर दे सकता है। यदि इस पुस्तक के माध्यम से हिंदी का पाठक मैथिली कविता और मैथिली आलोचना के निकट पहुँचता है तथा श्री मण्डल के काव्य-संसार को अधिक व्यापक संदर्भ में समझ पाता है, तो मैं अपने अनुवाद-प्रयास को सार्थक मानूँगी।

इस पुस्तक पर कार्य करते हुए श्री जगदीश प्रसाद मण्डल के व्यापक साहित्यिक अवदान और उनकी काव्य-दृष्टि के प्रति मेरे मन में आदर और गहरा हुआ है। सामान्य मनुष्य, श्रम, गाँव, सामाजिक संबंध और जीवन-संघर्ष को जिस आत्मीयता और जिम्मेदारी के साथ उन्होंने अपने साहित्य का विषय बनाया है, वह उनकी रचनात्मक पहचान का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। उसी प्रकार इस कृति के मूल लेखक डॉ. उमेश मण्डल के प्रति भी मैं आभारी हूँ, जिनके गंभीर अध्ययन और आलोचनात्मक श्रम ने मुझे इस विशिष्ट कृति से जुड़ने का अवसर दिया।

इस अनुवाद-यात्रा में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग देनेवाले सभी लोगों के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ। विशेष रूप से अपने माता-पिता के प्रति मेरा आभार शब्दों में पूरी तरह व्यक्त नहीं हो सकता। उनका स्नेह, विश्वास और निरंतर प्रेरणा मेरे अध्ययन, लेखन और अनुवाद की यात्रा में सदैव मेरे साथ रही है। इस कार्य को पूर्ण करने में भी उनका प्रोत्साहन मेरे लिए सबसे बड़ा संबल बना।

इसी विश्वास के साथ यह हिंदी अनुवाद पाठकों को सौंप रही हूँ कि भाषा बदलने पर भी मूल कृति की वैचारिक गंभीरता, साहित्यिक संवेदना और आलोचनात्मक चेतना उनसे उसी आत्मीयता के साथ संवाद कर सकेगी।

- पल्लवी मण्डल

भूमिका

✺

जगदीश प्रसाद मण्डल जी के रचनात्मक व्यक्तित्व को समझने के लिए उनकी प्रकाशित पुस्तकों की सूची पर्याप्त नहीं है। उसी प्रकार उनके साहित्य को कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता अथवा वैचारिक गद्य की अलग-अलग विधागत सीमाओं में बाँट देने से भी उनकी रचनाधर्मिता के मूल स्वर को पकड़ना असंभव है। मण्डल जी के साहित्य का वास्तविक स्वरूप उस जीवन से निर्मित होता है, जिसमें गाँव की मिट्टी, खेत का श्रम और किसान की चिंता एक साथ साँस लेती है। इसी के साथ समाज की टूटन, लोक-संस्कार की स्मृति, संघर्ष का ताप और मनुष्य के भीतर बचा हुआ नैतिक विवेक उसका आंतरिक धरातल बनाते हैं। इन सबको अलग-अलग देखने पर उनका रचना-संसार बिखरा हुआ प्रतीत हो सकता है। परंतु एक साथ पढ़ने पर उसमें एक स्पष्ट जीवन-दिशा प्रत्यक्ष होती है। प्रस्तुत पुस्तक उसी आंतरिक जीवन-दिशा को ‘झुकाव’ के नाम से पढ़ने और परखने का आलोचनात्मक प्रयास है।

मैथिली आलोचना में प्रायः रचनाकार की कृतिसूची, विधागत उपलब्धि अथवा विषयगत परिचय पर अधिक बल दिया जाता रहा है। परंतु किसी रचनाकार के भीतर सक्रिय जीवन-दिशा, उसके मूल्य-चयन और सामाजिक प्रतिबद्धता को एक साथ पढ़ने की आवश्यकता भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। मण्डल जी के संदर्भ में यह आवश्यकता और अधिक ब`ढ़ जाती है, क्योंकि उनका साहित्य जीवन से अलग रचा गया काव्याभ्यास नहीं, बल्कि जीवन के भीतर से उपजा हुआ रचनात्मक अनुभव है।

‘झुकाव’ शब्द यहाँ सामान्य रुचि अथवा पसंद के अर्थ में प्रयुक्त नहीं है।

रुचि बदल सकती है। पसंद परिस्थितियों के दबाव में बन या बिगड़ सकती है। परंतु 'झुकाव' व्यक्तित्व की आंतरिक दिशा होता है। लेखक किस जीवन के साथ खड़ा है, किस मनुष्य को अपने साहित्य का केंद्र बनाता है, कौन-सा दुःख उसे बेचैन करता है और कौन-सा अन्याय उसे बोलने के लिए बाध्य करता है, ये सभी प्रश्न महत्त्वपूर्ण हैं। इसके साथ कौन-सी भाषा उसे अपनी लगती है, कौन-सा बिंब उसके भीतर से उठता है और कौन-से मूल्य को वह अपनी रचना में बार-बार स्थापित करता है, इन सबके संयुक्त उत्तर से रचनाकार का झुकाव निर्मित होता है। इसलिए 'झुकाव का परीक्षण' वास्तव में लेखक की जीवन-दृष्टि और सामाजिक पक्षधरता से आरंभ होकर उसकी विचार-दिशा, संवेदनात्मक केंद्र, भाषिक रूप-संरचना और रचनात्मक आग्रह तक पहुँचने वाली समेकित आलोचनात्मक परख है।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी के जीवन का झुकाव निजी सुविधा की ओर नहीं, समाज की ओर रहा है। वे अपने जीवन की आरंभिक अवस्था से ही गाँव, परिवार, समाज और संघर्ष के बीच विकसित हुए। उनकी शिक्षा, खेती-बाड़ी, समाजसेवा, सामाजिक संघर्ष, केस-मुकदमे, जेल-यात्रा और लोकसंबंधों के अनुभवों ने उनकी चेतना को अलग ढंग से गढ़ा है। वे जीवन को दूर से देखने वाले लेखक नहीं हैं। वे जीवन को भीतर से देखकर जीने वाले सर्जक हैं। यह जीवन-सान्निध्य उनके साहित्य को विश्वसनीयता देता है। उनकी रचना में जो किसान आता है, वह पुस्तक में पढ़ा हुआ किसान नहीं, बल्कि जीवन में देखा हुआ, साथ जिया हुआ और संघर्ष में अनुभव किया हुआ किसान है। इसी कारण उनकी कविता पाठक को केवल कल्पना नहीं लगती; वह जिये हुए लोक-इतिहास की ध्वनि की तरह सामने आती है। उनके लेखन में समाज वस्तु नहीं, संबंध है। किसान पात्र नहीं, जीवन का आधार है। श्रम प्रसंग नहीं, सभ्यता को संभालने वाली शक्ति है। इसी कारण उनके साहित्य में लोकजीवन का उल्लेख सूचना के रूप में नहीं, आत्मानुभव के रूप में उपस्थित होता है।

मण्डल जी का वैचारिक झुकाव भी इस जीवनाधार से अलग नहीं है। उनके लिए विचार पुस्तकीय अवधारणा तक सीमित नहीं रहता। वह जीवन की कसौटी पर जाँचे-परखे हुए सत्य के रूप में सामने आता है। उनका साहित्य बार-

बार श्रम, आत्मनिर्भरता, सामाजिक न्याय, लोक-विवेक, नैतिक साहस और मनुष्य की गरिमा के पक्ष में खड़ा होता है तथा रूढ़ि-विरोधी चेतना को भी स्पष्ट करता है। परंतु उनका प्रतिरोध क्रोध के अँधेरे में समाज को तोड़ने वाला प्रतिरोध नहीं है। वे समाज के सुप्त विवेक को जगाते हैं। वे अन्याय को चिह्नित करते हैं, पाखंड को पहचानते हैं और रूढ़ि की जड़ता पर प्रहार करते हैं। परंतु मनुष्य के भीतर बची हुई संभावना पर उनका भरोसा कभी नहीं टूटता। इसी कारण उनके साहित्य का प्रतिरोध जीवन-विरोधी नहीं, जीवन-निर्माणकारी है।

उनके रचना-संसार में गद्य और पद्य के बीच कृत्रिम दूरी नहीं मिलती। कहानी, उपन्यास, नाटक, वैचारिक लेखन और पद्य, सभी विधाओं में मूलतः एक ही जीवन-दृष्टि प्रवाहित होती है। गद्य में जो समाज विस्तृत कथानक, पात्र, संवाद और परिस्थिति के साथ खुलता है, पद्य में वही समाज संकेत, लय, बिंब, आवृत्ति और ध्वनि के रूप में सामने आता है। गद्य में जो किसान, मजदूर, स्त्री, परिवार, गाँव, संघर्ष, न्याय, असमानता और नैतिक प्रश्न विस्तृत रूप में उपस्थित हैं, पद्य में वे संक्षिप्त, सघन और ध्वन्यात्मक रूप पाते हैं। इस दृष्टि से मण्डल जी का काव्य-संसार उनके गद्य-संसार से अलग-थलग सृजन-क्षेत्र नहीं, बल्कि लोक-यथार्थ का लयात्मक विस्तार है।

इस पुस्तक की आवश्यकता इस कारण भी अनुभव होती है कि मण्डल जी के काव्य-संसार पर पूर्व में आलोचनात्मक कार्य हुआ है। उस कार्य में काव्य-संग्रहों के परिचय, क्रम, प्रमुख कविताओं, भावभूमि और विषय-व्याप्ति पर विचार किया गया है। परंतु प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य पुस्तकवार पुनरावृत्ति करना नहीं है। यह अध्ययन पूर्व विचार के आधार को स्वीकार करते हुए, उसे आगे बढ़ाकर मण्डल जी के काव्य-संसार में अंतर्निहित प्रवृत्ति, जीवन-दृष्टि और मूल्य-बोध का समेकित परीक्षण करता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक पूर्ववर्ती काव्य-अवलोकन का पुनर्लेखन नहीं, बल्कि उसका आलोचनात्मक विस्तार है। यहाँ प्रश्न यह नहीं है कि किस पुस्तक में कौन-कौन-सी कविताएँ हैं; मुख्य प्रश्न यह है कि बारहों काव्य-पुस्तकों के भीतर एक साथ चलने वाली जीवन-दिशा क्या है। यह अध्ययन उसी अंतर्धारा को पहचानने का प्रयास करता है। प्रस्तुत पुस्तक का आधार 'इन्द्रधनुषी अकास', 'राति-दिन', 'तीन जेठ एगारहम माघ', 'सरिता',

'गीतांजलि', 'सुखाएल पोखरिक जाइठ', 'सतबेध', 'चुनौती', 'रहसा चौरी', 'कामधेनु', 'मन मथन' और 'अकास गंगा' अवश्य हैं। परंतु इन सबको क्रमशः परिचयात्मक अध्याय के रूप में नहीं रखा गया है। इन पुस्तकों को आधार-सामग्री के रूप में पढ़कर रचनाकार जगदीश प्रसाद मण्डल के भीतर बार-बार प्रकट होने वाली काव्य-प्रवृत्ति के झुकाव का परीक्षण किया गया है।

मण्डल जी के पद्य का पहला स्पष्ट झुकाव मिथिला की मिट्टी-पानी की ओर है। उनकी कविता अमूर्त आकाश में भले ही विचरण करती प्रतीत हो, परंतु उनके पाँव हमेशा धरती पर रोपे रहते हैं। गाँव-खेत का जीवन, जल-धरातल, ऋतु-चक्र और अँधेरे-उजाले का अनुभव उनकी कविता में केवल बाहरी दृश्य नहीं बनता। ये सब जीवन की रचनात्मक इकाई के रूप में उपस्थित होते हैं। मिथिला का भूगोल उनके पद्य में सामाजिक भूगोल बन जाता है। इस सामाजिक भूगोल में जल-स्रोत मात्र जल का स्रोत नहीं, गाँव की सामुदायिक स्मृति है। खेत मात्र उत्पादन का स्थान नहीं, श्रम, धैर्य और आत्मनिर्भरता का आधार है। मिट्टी-पानी का प्रश्न यहाँ पर्यावरण, कृषि, परिवार और समाज का संयुक्त प्रश्न बन उठता है। पोखर का सूखना मिथिला के जीवन में संवेदना, साधन और आशा के सूखेपन का संकेत बनता है। चौर (जल-जमाव वाली निचली कृषि-भूमि) में ठहरा पानी किसान के लिए केवल प्राकृतिक दृश्य नहीं है। वह विवशता, जोखिम और संघर्ष का जीवित बिंब बन उठता है। जेठ-माघ समय के ताप और जीवन-परीक्षा के प्रतीक बनते हैं। आकाश और गंगा विस्तार तथा प्रवाह की संयुक्त भावभूमि बनते हैं।

मण्डल जी का दूसरा झुकाव किसान, मजदूर और श्रमशील मनुष्य की ओर है। उनके पद्य में किसान केवल करुणा उत्पन्न करने वाला पात्र नहीं है। वह इतिहास, समाज और जीवन की वास्तविक धुरी है। अन्न, श्रम, पानी, उपज और अभाव के प्रश्न उनकी कविता में अलग-अलग समस्याएँ मात्र नहीं हैं। वे सभ्यता के नैतिक प्रश्न बनकर भी खड़े होते हैं। श्रमशील मनुष्य का महत्त्व उनके यहाँ केवल आर्थिक उत्पादन तक सीमित नहीं है। जो हाथ अन्न उपजाते हैं, जो देह पानी-कीचड़ में उतरती है, जो परिवार की दिनचर्या संभालती है, वही समाज का वास्तविक आधार है। मण्डल जी की कविता इसी श्रम को गरिमा देती है। 'रहसा

चौरी' के काव्य-संसार में चौर और किसान का संबंध मात्र भूगोल का संबंध नहीं है। वह जीवन, धैर्य, श्रम और संघर्ष का संबंध है। 'कामधेनु' में समृद्धि का मिथकीय प्रतीक श्रम, उपयोगिता और जीवन-संरचना के लोक-अर्थ से जुड़ जाता है। 'सतबेध' और 'चुनौती' में जीवन का सत्य, संघर्ष और सामाजिक कसौटी एक साथ उद्‌घाटित होते हैं।

तीसरा झुकाव समाज में विद्यमान दरारों, असंतुलन और विवेकहीनता को चिह्नित करने का है। मण्डल जी समाज को अस्वीकार नहीं करते। वे समाज द्वारा खड़ी की गई विभाजनकारी सीमाओं, जातिगत और वर्गगत भेदभाव, पाखंड तथा रूढ़िगत जड़ता को देखते हैं। साथ ही, वे परिवार और संबंधों में बढ़ती टूटन तथा सामुदायिक असंतुलन को भी चिह्नित करते हैं। उनकी कविता समाज-विरोधी नहीं, बल्कि समाज-संशोधन की पक्षधर है। यह कविता समाज को उसका विकृत चेहरा दिखाती है, परंतु उस चेहरे के पीछे छिपी मानवीय संभावना की खोज भी करती है। मण्डल जी की दृष्टि व्यवस्था, व्यवहार और संबंधों के दोष को चिह्नित करती है, परंतु समाज के पूर्ण अस्वीकार तक नहीं पहुँचती। इसी कारण उनकी आलोचना कठोर होते हुए भी विनाशकारी नहीं है। यह आलोचना दरअसल प्रेम से उपजी आलोचना है। मण्डल जी गाँव और समाज से प्रेम करते हैं, इसलिए उसके दोष को छिपाते नहीं हैं; वे दोष दिखाते हैं, क्योंकि वे समाज के भीतर बचे हुए विवेक पर भरोसा रखते हैं। यह आलोचना जीवनोन्मुखी रहती है और समाज के भीतर नये विवेक की संभावना खोजती है।

चौथा झुकाव परिवार, स्त्री-संवेदना और लोक-संस्कार की ओर है। मण्डल जी की रचना में परिवार भावुक स्मृति का घर नहीं, सामाजिक नैतिकता की पहली पाठशाला है। माँ, बेटी, बहन, पत्नी और सास-बहू से लेकर वृद्ध, बालक और गृहस्थ जीवन तक अनेक पारिवारिक अनुभव उनके पद्य में स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त हुए हैं। लोक-रीति, विवाह-संस्कार, ममता, श्रम और जिम्मेदारी भी उस अनुभव-संसार को गहरा बनाते हैं। स्त्री की उपस्थिति करुणा अथवा सौन्दर्य की वस्तु के रूप में नहीं है। वह जीवन-संरचना, श्रम, सहनशीलता और संबंधों के नैतिक आधार के रूप में दिखाई देती है। इस पक्ष के परीक्षण से मण्डल जी की लोक-समाज संबंधी दृष्टि अत्यंत गहरे रूप में स्पष्ट

होती है।

पाँचवाँ झुकाव समय, मौसम और जीवन-परीक्षण के बोध की ओर है। मण्डल जी की कविता में समय कैलेण्डर का पन्ना नहीं, अनुभव का ताप है। रात-दिन, जेठ-माघ, बरसात-धूप, अगहन-पूस, अँधेरा-उजाला, ये सभी द्वंद्व जीवन की परीक्षा बनकर आते हैं। समय मनुष्य को परखता है। मौसम श्रम का मूल्य दिखाता है। धूप, बाढ़, ठंड और सूखा किसान की नियति मात्र नहीं, समाज की सामूहिक उत्तरदायित्व-बोध से जुड़ी समस्या बनते हैं। इस दृष्टि से उनकी कविता प्रकृति-काव्य की सामान्य परंपरा से अलग रूप में खड़ी होती है।

छठा झुकाव जीवन-जिजीविषा, मृत्यु-बोध और नैतिक साहस की ओर है। उनके पद्य में दुःख, मृत्यु, अभाव, टूटन, लाज, डर और संघर्ष की गहरी उपस्थिति मिलती है, परंतु यह हार मान चुके जीवन का चित्र नहीं, बल्कि जीवन के कठोरतम यथार्थ में भी मनुष्य की जिजीविषा और नैतिक बल का उद्घाटन है। यह कविता जीवन के कठोर यथार्थ को स्वीकार करती है और उसके भीतर मनुष्य के उठने की शक्ति को चिह्नित करती है। उनकी आशा भावुक और सजावटी नहीं है। वह संघर्ष से उपजी आशा है। उनके काव्य का मनुष्य रोता है, टूटता है, सोचता है, पछताता है और अंततः जीवन से मुँह नहीं मोड़ता, बल्कि अपने नैतिक बल को बचाते हुए आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है।

मण्डल जी के पद्य का भाषिक झुकाव भी अत्यंत विशिष्ट है। उनकी भाषा शास्त्रीय अलंकारिकता से अधिक लोकध्वनि और जीवन-स्पर्श पर आधारित है। उस भाषा में ग्रामीण गन्ध है, क्योंकि वह जीवन की साधारण बोलचाल और लोक-अनुभव से उठी हुई भाषा है। आवृत्ति की लय उसे गीतात्मकता देती है, प्रश्न की बेचैनी उसे विचारशील बनाती है और पुकार का स्वर पाठक को सीधे संबोधित करता है। टोका-टोकी, हँसना-रोना, रोज़मर्रा की भाग-दौड़, संबंधों की खींचातानी और आत्मसंवाद की सहज उपस्थिति उसे बनावटी साहित्यिक भाषा बनने से बचाती है; इसी कारण यह भाषा जीवन के अधिक निकट पहुँचती है। यह भाषा पाठक को दूर से प्रभावित करने वाली भाषा नहीं है। यह भीतर से बोलने वाली भाषा है। उनके शब्द जीवन की जीवंतता से जुड़े हुए हैं। इसी कारण उनके पद्य को पढ़ते समय भाषा केवल माध्यम के रूप में नहीं, अनुभव के

वास्तविक स्वभाव के रूप में सामने आती है।

उनका प्रतीक-संसार भी लोकजीवन से उपजा हुआ है। पेड़-फूल, धान-अन्न, मिट्टी-पानी, ऋतु-चक्र, आकाश-गंगा और खेत-पथार का धरातल उनके पद्य में बाहर से लाई गयी सजावट नहीं हैं। ये सब अनुभव से उपजे हुए बिंब हैं। इन बिम्बों में मिथिला, श्रम, प्रकृति, मनुष्य का संघर्ष और जीवन की नैतिक व्याख्या एक साथ उपस्थित है। इसी कारण उनके प्रतीक पाठक को केवल दृश्य नहीं दिखाते, बल्कि उस दृश्य के भीतर छिपे जीवनार्थ तक पहुँचाते हैं। मण्डल जी के शीर्षक भी आकस्मिक नहीं हैं। ये शीर्षक प्रायः काव्य-पुस्तक के प्रवेश-द्वार की तरह हैं। शीर्षक पढ़ते ही पाठक उस जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करता है, जहाँ ऋतु, श्रम, जल, समाज, स्मृति और आत्ममंथन एक साथ सक्रिय रहते हैं। 'रहसा चौरी', 'कामधेनु', 'तीन जेठ एगारहम माघ', 'सुखाएल पोखरिक जाइठ' अथवा 'अकास गंगा' जैसे शीर्षक पुस्तक के केवल नाम नहीं, बल्कि उनकी काव्य-दृष्टि के संकेत हैं। इन शीर्षकों से स्पष्ट होता है कि उनकी कविता मिट्टी-पानी, ऋतु, श्रम, लोकविश्वास, संघर्ष और जीवन के विस्तृत अनुभव से गहरे रूप में जुड़ी हुई है।

प्रस्तुत पुस्तक की संरचना इस समग्र चिंतन को ध्यान में रखकर बनायी गयी है। प्रथम खंड में 'झुकाव' शब्द का अर्थ, अध्ययन-स्रोत, पद्धति और आलोचनात्मक आधारभूमि को स्पष्ट किया गया है। द्वितीय खंड में मण्डल जी के जीवन, समाज, विचार और साहित्यिक झुकाव का परीक्षण किया गया है। तृतीय खंड उनके काव्य-संसार के विषयगत और संवेदनात्मक झुकाव पर केन्द्रित है। चतुर्थ खंड में भाषा, शिल्प, प्रतीक, बिंब, काव्य-स्वर और संवादधर्मी संरचना पर विचार किया गया है। पंचम खंड में जीवन और रचना, लेखक और काव्य, अनुभव और अभिव्यक्ति, लोकधर्मिता और मैथिली काव्य-परंपरा के संबंध का समेकित मूल्यांकन किया गया है।

मैथिली काव्य-परंपरा की पृष्ठभूमि में मण्डल जी का महत्त्व इस बात में है कि वे लोकजीवन को केवल विषय नहीं बनाते, उसे काव्य का नैतिक केंद्र बना देते हैं। वे लोकभाषा को केवल मनोरंजन के लिए नहीं अपनाते, बल्कि उसके माध्यम से सामाजिक विवेक, श्रम की गरिमा और मनुष्य की अस्मिता को स्वर

देते हैं। इस दृष्टि से उनकी कविता परंपरा से जुड़ी रहते हुए भी वर्तमान जीवन के प्रश्नों से सक्रिय संवाद करती है।

प्रस्तुत अध्ययन की सीमा भी स्पष्ट है। यह पुस्तक मण्डल जी की प्रत्येक कविता की पृथक व्याख्या प्रस्तुत करने का दावा नहीं करती। वह अलग प्रकृति की पुस्तक का विषय होगा। प्रस्तुत कार्य उनके काव्य-संग्रहों में सक्रिय काव्य-झुकाव का समेकित परीक्षण है। इसमें कृति-विशेष से उदाहरण लिये गये हैं, परंतु उद्देश्य उदाहरणों का विस्तार नहीं है। उद्देश्य प्रवृत्ति की पहचान है। इस सीमा को स्वीकार करना प्रस्तुत अध्ययन की कमजोरी नहीं, बल्कि उसकी आलोचनात्मक पद्धति की स्पष्टता है। इसी कारण यह अध्ययन धारणात्मक और आलोचनात्मक है।

अंततः, 'झुकाव का परीक्षण' इस विश्वास पर आधारित है कि जगदीश प्रसाद मण्डल जी का साहित्य उनके जीवन से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। मण्डल जी ऐसे सर्जक हैं, जो समाज के भीतर जीते हैं, खेत का श्रम देखते हैं, गाँव का संघर्ष भोगते हैं, लोक की भाषा सुनते हैं और न्याय-अन्याय के व्यवहार से गुजरते हुए अपनी रचनात्मक दृष्टि विकसित करते हैं। इसी कारण उनकी रचना उनकी जीवन-दृष्टि का प्रमाण बन उठती है। वे अपनी एक आँख समाज पर और दूसरी आँख कागज-कलम पर रखकर लिखने वाले लेखक हैं; इसलिए उनका साहित्य जीवन से कट नहीं सकता। मण्डल जी की काव्यधारा इस जीवन-संलग्न रचनात्मक दृष्टि का गहरा उदाहरण है। उनकी कविता धरती से उठती है, लोकजीवन से सिंचित होती है, श्रम से तपती है, समाज से तर्क करती है, मनुष्य को संबोधित करती है और जीवन के कठिन यथार्थ में नैतिक उजाला खोजती है। इस पुस्तक का प्रयत्न उसी उजाले की पहचान करना है।

मण्डल जी के काव्य-संसार का अवलोकन करते समय पाठक सहज अनुभव करता है कि उनकी कविता मात्र भाव-सजावट या शब्दों की कारीगरी नहीं है, बल्कि जीवन का आंतरिक लेखा-जोखा है, जिसमें मनुष्य का संघर्ष, श्रम, पीड़ा, आशा, आत्ममंथन और सामाजिक चेतना एक साथ अभिव्यक्त होते हैं। यहाँ शब्द मनोरंजन का साधन नहीं, अनुभव की तपित धातु हैं। यहाँ लोकजीवन केवल पृष्ठभूमि नहीं, साहित्य का मूल धरातल है। इस अर्थ में 'झुकाव का

परीक्षण' जगदीश प्रसाद मण्डल जी की काव्यधारा में निहित दिशा, स्वभाव, आग्रह और मूल्य-बोध को समझने का विनम्र आलोचनात्मक प्रयास है।

पाठक जब इस अध्ययन में प्रवेश करेंगे, तब उन्हें मण्डल जी की कविता केवल पढ़ने की वस्तु नहीं लगेगी। उसमें निहित जीवन, समाज और मनुष्य की नैतिक चेतना के साथ संवाद करने का अवसर भी मिलेगा। विद्वान समीक्षक इस अध्ययन को मण्डल जी की काव्य-प्रवृत्ति, जीवन-दृष्टि और लोक-आधारित मूल्य-चेतना की समेकित आलोचनात्मक प्रस्तावना के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। आशा है, यह पुस्तक पाठक को मण्डल जी के काव्य-संसार के भीतर लोक-संवेदना, श्रमशील यथार्थ और जीवनोन्मुखी दृष्टि को नये अर्थ में देखने की दृष्टि देगी। साथ ही, समीक्षक को उनके कविता-संसार के पुनर्पाठ, पुनर्मूल्यांकन और आधुनिक मैथिली काव्य-परंपरा में उनके विशिष्ट स्थान के निर्धारण के लिए उपयोगी आधार भी प्रदान करेगी।

इसी विश्वास के साथ यह भूमिका पाठक को आमंत्रण देती है कि वे मण्डल जी के काव्य-संसार में केवल कविता पढ़ने के लिए नहीं, बल्कि जीवन की उस धरती को समझने के लिए प्रवेश करें, जहाँ श्रम, लोक-संवेदना, सामाजिक विवेक और मनुष्य की गरिमा एक-दूसरे से अलग नहीं, बल्कि एक ही रचनात्मक चेतना के रूप में उपस्थित हैं। यदि यह अध्ययन पाठक को मण्डल जी की कविताओं के भीतर बची हुई इस लोकधर्मी उजास तक पहुँचने की प्रेरणा देता है, तो इसका उद्देश्य सार्थक माना जाएगा।

- उमेश मण्डल

प्रथम खंड:

अवधारणा, पद्धति और अध्ययन-आधार

1. 'झुकाव' शब्द का आशय, सीमा तथा आलोचनात्मक आधार: किसी रचनाकार के साहित्य को समझने के क्रम में प्रायः उसकी विषय-वस्तु, शिल्प, भाषा, चरित्र-योजना, प्रतीक-बिंब और विचारधारा पर अलग-अलग चर्चा की जाती है। ये सभी चर्चाएँ आवश्यक हैं। परंतु यदि लेखक के समग्र रचना-संसार को उसकी आंतरिक दिशा सहित समझना हो, तो एक व्यापक आलोचनात्मक शब्द की आवश्यकता पड़ती है। 'झुकाव' इसी प्रकार का शब्द है। यह शब्द सामान्य रुचि, पसंद, स्वभाव, प्रवृत्ति अथवा पसंद-नापसंद तक सीमित नहीं है। 'झुकाव' लेखक में निहित उस स्थायी दिशा को सूचित करता है, जहाँ उसकी जीवन-अनुभूति, वैचारिक-संवेदनात्मक गठन, सामाजिक पक्षधरता, भाषा-चयन और मूल्य-बोध बार-बार जाकर अभिमुख होते हैं। लेखक कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक या वैचारिक गद्य, किसी भी विधा में लिखे, अभिव्यक्ति का रूप बदल सकता है। परंतु रचना के भीतर जो मूल जीवन-दिशा, सामाजिक पक्षधरता, मूल्य-दृष्टि और संवेदनात्मक आग्रह बार-बार उभरकर आते हैं, उसी स्थायी रचनात्मक अभिमुखता को यहाँ 'झुकाव' कहा गया है।

'झुकाव' शब्द का अर्थ केवल इतना नहीं है कि लेखक किस विषय को अधिक पसंद करता है। कोई लेखक किसान पर लिखता है, तो केवल इस आधार पर यह निष्कर्ष पर्याप्त नहीं कि उसका झुकाव किसान की ओर है। असल प्रश्न यह है कि वह किसान को कैसे देखता है। वह उसे दया-पात्र के रूप में देखता है, संघर्षशील मनुष्य के रूप में, समाज के आधार के रूप में, इतिहास के वाहक के रूप में, अथवा ग्रामीण दृश्य के एक पात्र के रूप में? इसी प्रकार कोई लेखक प्रकृति पर लिखता है, तो यह जानना आवश्यक है कि प्रकृति उसके लिए सौन्दर्य

का बाहरी दृश्य है, मनःस्थिति का संकेत है, दार्शनिक प्रतीक है, या जीवन-व्यवस्था और अर्थव्यवस्था का आधार है। इसी सूक्ष्म भेद को समझना 'झुकाव' के आलोचनात्मक उपयोग की पहली शर्त है।

रुचि और झुकाव में अंतर है। रुचि अधिकतर व्यक्तिगत होती है। झुकाव व्यक्तित्व और दृष्टि, दोनों से जुड़ा रहता है। रुचि क्षणिक भी हो सकती है। झुकाव अपेक्षाकृत स्थायी होता है। रुचि कभी-कभी बाहरी प्रभाव से बन जाती है, परंतु झुकाव दीर्घ जीवन-अनुभव, संघर्ष, अभ्यास, विचार और संवेदना से निर्मित होता है। रुचि किसी विषय को आकर्षक बनाती है, परंतु झुकाव उसे जीवन का आवश्यक प्रश्न बना देता है। इस अर्थ में झुकाव लेखक की आंतरिक नैतिक दिशा भी है। लेखक कौन से अन्याय पर मौन नहीं रह सकता, कौन-सा दुःख उसे भीतर से बोलने के लिए बाध्य करता है और कौन-सा लोकसमूह उसके साहित्य में सम्मान के साथ प्रवेश पाता है, ये सभी झुकाव के मुख्य संकेत हैं। कौन-सी भाषा उसे अपनी लगती है और कौन-सा मूल्य उसकी रचना में बार-बार प्रकट होता है, इन सब से झुकाव की संरचना बनती है।

सामान्य प्रवृत्ति और झुकाव में भी भेद है। प्रवृत्ति रचनात्मक अभ्यास का संकेत देती है। झुकाव रचनात्मक दिशा और मूल्य का संकेत देता है। जैसे, किसी कवि की प्रवृत्ति आवृत्ति-प्रयोग, लयात्मक वाक्य-विन्यास, प्रश्नात्मक शैली या संवादधर्मी संरचना की ओर हो सकती है। परंतु उसका झुकाव तब समझ में आता है जब देखा जाए कि यह आवृत्ति किसके लिए है, यह प्रश्न किस जीवन-स्थिति से उठा है और यह संवाद समाज के भीतर कैसे पहुँचता है। शिल्पगत प्रवृत्ति झुकाव का साधन बन सकती है, परंतु झुकाव उसका उद्देश्य और मूल्य-दिशा स्पष्ट करता है। इसलिए 'झुकाव' शब्द को केवल शैलीगत प्रवृत्ति तक सीमित करना उचित नहीं।

जगदीश प्रसाद मण्डल जी के संदर्भ में 'झुकाव' शब्द विशेष रूप से सार्थक है, क्योंकि उनका साहित्य किसी एक विधा या एक प्रकार के लेखन तक सीमित नहीं है। कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, वैचारिक गद्य, संवाद, कविता और गीत आदि विभिन्न विधाओं में उनकी लेखनी चली है और चल भी रही है। यदि उनकी रचना को विधा के अनुसार अलग-अलग पढ़ा जाए, तो

प्रत्येक विधा की विशिष्टता दिखाई पड़ेगी। परंतु यदि उनकी समग्र रचना की मूल जीवन-दिशा खोजी जाए, तो एक व्यापक और गहरा साम्य सामने आता है। वह साम्य लोकजीवन की ओर झुकी हुई दृष्टि, श्रमशील मनुष्य का सम्मान, मिथिला की मिट्टी-पानी से उपजा हुआ अनुभव और किसान के संघर्ष में दिखाई देता है। इसके साथ समाज की विकृतियों से असहमति, विवेक का आग्रह, नैतिक जीवन की खोज और मनुष्य की गरिमा पर अडिग विश्वास भी उस साम्य को गहरा बनाते हैं। इसी कारण इस अध्ययन में 'झुकाव' शब्द शीर्षक का आकर्षण मात्र नहीं है। यह पूरी तरह आलोचनात्मक पद्धति का आधार है।

किसी लेखक के झुकाव का परीक्षण करते समय पहला प्रश्न उसके जीवन-स्रोत से जुड़ता है। लेखक का जन्म-परिवेश, पारिवारिक और सामाजिक स्थिति, शिक्षा-पेशा, संघर्ष-अनुभव, लोकसंबंध और ऐतिहासिक समय उसकी रचना-दृष्टि के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। परंतु जीवनवृत्त और झुकाव समानार्थी नहीं हैं। जीवनवृत्त घटनाओं का संग्रह है, और झुकाव उन घटनाओं से निर्मित जीवन-दिशा। यदि कोई लेखक किसानी जीवन में रहा, समाजसेवा में सक्रिय रहा, गाँव के संघर्ष से गुज़रा और उसके बाद उसने लिखना शुरू किया, तो आलोचक का काम केवल यह कहना नहीं कि उसका जीवन ऐसा था। आलोचक का काम यह देखना है कि उसके जीवन का अनुभव भाषा, विषय-चयन, प्रतीक-योजना, भाव-संरचना, पात्र-दृष्टि और मूल्य-निर्णय में कैसे प्रकट हुआ है।

झुकाव का दूसरा आधार विचार है। लेखक का विचार कभी प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होता है और कभी रचना-संरचना में अंतर्निहित रहता है। यहाँ विचार का अर्थ किसी राजनीतिक घोषणा या सिद्धांत की पुनरावृत्ति नहीं है। विचार का अर्थ जीवन, समाज और मनुष्य को समझने की लेखक की अपनी आलोचनात्मक पद्धति है। लेखक समाज की समस्या को कैसे देखता है? वह दुःख के कारण को नियति मानता है अथवा सामाजिक संरचना में खोजता है? वह श्रम को केवल जीविका का साधन मानता है अथवा मानवीय गरिमा का स्रोत? वह अंधविश्वास के आगे समर्पण करता है अथवा विवेक का आग्रह करता है? वह परंपरा को प्रश्नहीन रूप में स्वीकार करता है अथवा परंपरा में निहित सार और विकृति, दोनों

का परीक्षण करता है? इन्हीं प्रश्नों के उत्तर लेखक के वैचारिक झुकाव को स्पष्ट करते हैं।

तीसरा आधार सामाजिक कर्म है। बहुत-से रचनाकार समाज पर लिखते हैं, परंतु समाज से उनका संबंध दूर का होता है। कुछ लेखक समाज को विषय बनाते हैं, कुछ समाज का अनुभव करते हैं और कुछ समाज के भीतर सक्रिय जीवन बिताते हैं। जगदीश प्रसाद मण्डल जी के संदर्भ में सामाजिक कर्म अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उनका रचना-संसार केवल कल्पना द्वारा रचा गया ग्रामीण दृश्य नहीं है। वह गाँव के भीतर जिये, भोगे, देखे और समझे हुए जीवन से उपजा है। जब लेखक समाज के भीतर सक्रिय होता है, तब उसके साहित्य में दया नहीं, साझेदारी आती है। निरीक्षण नहीं, सहभागिता आती है। बाहरी भाषा नहीं, लोक की आंतरिक ध्वनि आती है। इसी कारण सामाजिक कर्म लेखक के झुकाव का विश्वसनीय आधार बनता है।

झुकाव का चौथा आधार विषय-ग्रहण है। कोई लेखक अपनी रचना में कौन-सा विषय बार-बार चुनता है, कौन-सी जीवन-स्थिति को प्रमुखता देता है और कौन-से अनुभव-संसार को पुनः-पुनः अभिव्यक्त करता है, यह आकस्मिक कभी नहीं होता। मण्डल जी के काव्य-संसार में मिथिला की धरती, गाँव-खेत का जीवन, किसान-मजदूर का संघर्ष, चौर-चाँचर-पोखर का जल-धरातल, धान-पानी, बाढ़-सूखा, जेठ-माघ का ऋतु-अनुभव, परिवार, माँ-बेटी के संबंध, सामाजिक विभाजन और रूढ़िगत बंधन, मृत्यु-बोध, श्रम, विवेक तथा आत्मनिर्भरता बार-बार उपस्थित होते हैं। इसे केवल विषयों का दोहराव नहीं माना जा सकता। यह मण्डल जी के रचनात्मक झुकाव और जीवन-दृष्टि का प्रमाण है। जो अनुभव लेखक के अन्तःकरण में स्थायी रूप से बस जाता है, वही विविध रूपों, प्रतीकों और लयों में बार-बार रचना में लौटता है।

पाँचवाँ आधार भाषिक चयन है। भाषा लेखक के झुकाव का गहरा संकेतक होती है। कोई लेखक लोकजीवन पर लिखकर भी ऐसी भाषा चुन सकता है जो लोक से दूर हो। कोई लेखक ग्रामीण अनुभव को सजावटी भाषा से ढँक सकता है। परंतु जब भाषा स्वयं लोकध्वनि, लोक-शब्द, कहावत-संवाद, संबोधन, ध्वनि-आवृत्ति, ग्रामीण गन्ध और जीवनगत लय से निर्मित होती है, तब

स्पष्ट होता है कि लेखक का झुकाव केवल विषय के स्तर तक सीमित नहीं है। वह भाषिक स्तर पर भी लोक की ओर अभिमुख है। मण्डल जी की काव्यभाषा इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। उनके शब्द केवल अर्थ-वहन नहीं करते। वे अनुभव का आधार भी बनते हैं। हँसना-रोना, धक्कम-धुक्कम और रग्गड़-घस्स जैसे ध्वन्यात्मक प्रयोग, धरती-पानी और खेत-खरिहान जैसे ग्रामीण शब्द-संयोजन तथा माँ-बेटी, समाज-बंधन और मृत्यु-जीवन जैसे संबंधसूचक युग्म रचना के भीतर लोकधर्मी ऊर्जा बनाते हैं।

छठा आधार रचनात्मक पुनरावृत्ति है। साहित्य में पुनरावृत्ति एक ओर कमजोरी होती है, तो दूसरी ओर वह लेखक की मूल चिंता को प्रकट भी करती है। यदि किसी प्रतीक, मूल्य, प्रश्न या जीवन-स्थिति की बार-बार उपस्थिति से नये-नये अर्थ खुलते हैं, तो वह पुनरावृत्ति नहीं है। वह काव्य-दृष्टि का स्थायी आधार है। मण्डल जी के पद्य में मिट्टी-पानी और गाँव का अनुभव, किसान और श्रम का संसार, समय और मृत्यु-बोध, समाज, विवेक, जीवन-जिजीविषा और लोकभाषा बार-बार आते रहते हैं। इस आवृत्ति को केवल विषयगत पुनरागमन नहीं, उनकी काव्य-झुकाव की मूल धुरी के रूप में पढ़ने की आवश्यकता है।

सातवाँ आधार मूल्य-बोध है। लेखक का झुकाव अंततः उसके मूल्य-चयन के रूप में प्रकट होता है। वह किस चीज़ को मानवीय मानता है और किस चीज़ को अमानवीय, इससे उसका मूल्य-बोध स्पष्ट होता है। किस व्यवहार को वह सही कहता है, किस व्यवहार को सामाजिक रोग मानता है, किस जीवन-शैली को टिकाऊ मानता है और किस मनुष्य के पक्ष में उसका साहित्य खड़ा होता है, इन सब से उसकी मूल्य-दृष्टि निर्मित होती है। मण्डल जी की रचना में श्रम, सत्य, विवेक और आत्मनिर्भरता सकारात्मक मूल्य के रूप में आते हैं। लोक-न्याय, सामाजिक जिम्मेदारी, परिवार की नैतिकता और मनुष्य की गरिमा भी उनकी मूल्य-दृष्टि का आधार बनते हैं। पाखंड, अन्याय, शोषण और असमानता पर उनकी दृष्टि आलोचनात्मक रहती है। विवेकहीनता, सामाजिक विघटन और कृत्रिमता भी उनकी रचना में प्रश्नांकित होती है। यही मूल्य-बोध की स्थिरता मण्डल जी के झुकाव का प्रमुख आधार है।

इस अध्ययन में 'झुकाव' के परीक्षण की सीमा भी स्पष्ट है। यह पुस्तक

मण्डल जी की प्रत्येक कविता की पंक्ति-दर-पंक्ति व्याख्या नहीं करती। यह पुस्तकवार परिचय तैयार करने का प्रयास भी नहीं है। यह अध्ययन उस अन्तःप्रवृत्ति को पकड़ने का प्रयास करता है, जो विभिन्न काव्य-संग्रहों में, विभिन्न शीर्षकों में, विभिन्न बिम्बों में और भिन्न-भिन्न शैलीगत रूपों में उपस्थित है। इसलिए जहाँ आवश्यक है, वहाँ कृति-विशेष से उदाहरण लिये गये हैं। परंतु उदाहरण उद्देश्य नहीं, प्रमाण हैं। उद्देश्य है मण्डल जी की काव्यधारा की मूल दिशा, उसके संवेदनात्मक केंद्र, उसके सामाजिक आधार, उसके भाषा-स्वभाव और उसके मूल्यगत आग्रह को चिह्नित करना और समझना।

इस आलोचनात्मक पद्धति में लेखक के जीवन और रचना के संबंध को महत्त्व दिया गया है, परंतु सावधानीपूर्वक। जीवन की प्रत्येक घटना को यांत्रिक रूप से कविता पर आरोपित नहीं किया गया है। जीवन-संदर्भ को रचनाबोध की सहायता के रूप में देखा गया है, रचना के स्थानापन्न रूप में नहीं। कविता अपना स्वतंत्र काव्य-शरीर रखती है। परंतु जब कविता में बार-बार वही जीवन-संसार, वही संघर्ष, वही लोकध्वनि, वही सामाजिक प्रश्न और वही मूल्य-दिशा फिर प्रकट होती है, तब जीवन और रचना के बीच के संबंध को आलोचनात्मक दृष्टि से उपेक्षित करना भूल होगा। इस पुस्तक में जीवन और साहित्य के संबंध को न आरोपित माना गया है, न अलग-अलग। उसे अन्तःसम्बद्ध रूप में पढ़ा गया है।

झुकाव का परीक्षण करते समय यह भी ध्यान में रखा गया है कि लेखक का रचना-संसार एकरेखीय नहीं होता। किसी लेखक के भीतर एकाधिक झुकाव रह सकते हैं। मण्डल जी की काव्यधारा में मिट्टी-पानी, किसान, सामाजिक प्रतिरोध, परिवार, लोक-संस्कार, मृत्यु-बोध, जीवन-जिजीविषा, लोकभाषा और संवादधर्मी शिल्प की ओर झुकाव दिखाई देता है। इन सभी झुकावों को अध्ययन की सुविधा के लिए अलग-अलग खंडों में देखा गया है। परंतु गहरे विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि ये सभी अलग-अलग दिशाएँ नहीं हैं। ये एक ही व्यापक मानवीय काव्य-दृष्टि के परस्पर सम्बद्ध रूप हैं। यह काव्य-दृष्टि अंततः मनुष्य, समाज, श्रम, संबंध और जीवन के पक्ष में खड़ी रहती है।

इस दृष्टि से 'झुकाव' शब्द आलोचना का जीवित उपकरण बनता है। यह न शुष्क सिद्धांत है, न अस्पष्ट भावात्मक संकेत। यह लेखक के जीवन और रचना

के बीच का सेतु है। यह विषय और मूल्य के बीच के संबंध को स्पष्ट करता है। यह भाषा और समाज की पारस्परिकता को दिखाता है। यह प्रतीक के भीतर लोक-यथार्थ की पहचान कराता है। यह कविता के भीतर निहित सामाजिक ऊर्जा को प्रकाश में लाता है। इसलिए मण्डल जी की काव्यधारा पर चर्चा करते समय 'झुकाव' शब्द अपनी आलोचनात्मक उपयोगिता सिद्ध करता है।

अंततः कहा जा सकता है कि जगदीश प्रसाद मण्डल जी के संदर्भ में झुकाव का परीक्षण उनके काव्य-संसार में निहित दिशा-पहचान है। यह प्रश्न उठाता है कि उनकी कविता कहाँ से उठती है, किस दिशा की ओर अभिमुख होती है और किसके साथ खड़ी रहती है। इसके साथ यह भी स्पष्ट होता है कि उनकी कविता कौन-से जीवन-मूल्य को बचाती है, किस भाषा से बोलती है, किस समाज को संबोधित करती है और कौन-सा नैतिक उजाला खोजती है। इसी तरह के अनेक प्रश्नों के उत्तर में मण्डल जी की काव्यधारा का मूल स्वर स्पष्ट होता है। इस अध्याय का उद्देश्य उसी परीक्षण की आधारभूमि तैयार करना है, ताकि मण्डल जी के जीवन के झुकाव और रचना के झुकाव, दोनों का विश्लेषण व्यवस्थित, समेकित और आलोचनात्मक रूप से विकसित हो सके।

2. अध्ययन के स्रोत, पद्धति और आलोचनात्मक आधारभूमि: किसी लेखक के रचना-संसार के 'झुकाव' का परीक्षण करने के लिए केवल एक कृति, एक विधा अथवा एक प्रसंग पर्याप्त नहीं होता। झुकाव लेखक के रचनात्मक व्यक्तित्व की आंतरिक दिशा है। इसलिए उसे समझने के लिए जीवन-संदर्भ, सामाजिक दृष्टि, वैचारिक आधार, भाषा, रचना-क्रम, विषय-पुनरावृत्ति, प्रतीक-योजना और मूल्य-बोध, सभी को एक साथ देखना आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन का आधार यही समेकित दृष्टि है। इसमें जगदीश प्रसाद मण्डल जी के काव्य-संग्रहों को मुख्य पाठ्य-सामग्री के रूप में ग्रहण किया गया है। इसके साथ उनके जीवनवृत्त, गद्य-साहित्य, सामाजिक कर्म, वैचारिक लेखन, संवादधर्मी सामग्री, पूर्व आलोचनात्मक अध्ययन और प्रकाशित परिचयात्मक ग्रन्थों को भी सहायक आधार के रूप में उपयोग किया गया है। इन स्रोतों के उपयोग का उद्देश्य यह है कि मण्डल जी के काव्य-संसार को उसके व्यापक जीवन-संदर्भ, सामाजिक पृष्ठभूमि और समग्र रचनात्मक व्यक्तित्व से अलग नहीं, अन्तःसम्बद्ध रूप में

समझा जा सके।

इस पुस्तक का मुख्य आधार मण्डल जी के बारह काव्य-संग्रह हैं। 'इन्द्रधनुषी अकास', 'राति-दिन', 'तीन जेठ एगारहम माघ', 'सरिता', 'गीतांजलि', 'सुखाएल पोखरिक जाइठ', 'सतबेध', 'चुनौती', 'रहसा चौरी', 'कामधेनु', 'मन मथन' और 'अकास गंगा' इस अध्ययन का मूल रचनात्मक क्षेत्र बने हैं। परंतु इन पुस्तकों को क्रमशः अलग-अलग परिचय के रूप में प्रस्तुत करना इस अध्ययन का उद्देश्य नहीं है। इन पुस्तकों को एक व्यापक काव्य-भूमि के रूप में पढ़ा गया है। इस पठन से मण्डल जी की काव्यधारा की अन्तःप्रवृत्ति, मुख्य झुकाव, विषयगत आग्रह, सामाजिक दृष्टि, प्रतीक-संसार, भाषिक प्रवृत्ति और मूल्य-दिशा को चिह्नित किया गया है।

काव्य-संग्रहों के अतिरिक्त मण्डल जी का जीवनवृत्त भी इस अध्ययन का महत्त्वपूर्ण सहायक स्रोत रहा है। गजेन्द्र ठाकुर लिखित 'जगदीश प्रसाद मण्डल: एकटा बायोग्राफी' मण्डल जी के जन्म, पारिवारिक पृष्ठभूमि, शिक्षा, कृषिजन्य जीवन, सामाजिक सक्रियता, संघर्ष, केस-मुकदमे, साहित्य-लेखन क्षेत्र में प्रवेश और रचना-क्रम के अनेक आधारभूत तथ्य उपलब्ध कराती है। इस स्रोत का उपयोग घटनाओं को संग्रहित करने के लिए नहीं किया गया है। इसका उपयोग यह देखने के लिए किया गया है कि मण्डल जी का जीवन-संघर्ष, सामाजिक कर्म और ग्रामीण अनुभव किस प्रकार उनके साहित्यिक झुकाव की आधारभूमि बनते हैं। जीवनवृत्त के तथ्यों को रचना के अर्थ पर यांत्रिक रूप से आरोपित नहीं किया गया है। उन्हें रचनात्मक दिशा को समझने की पृष्ठभूमि के रूप में ग्रहण किया गया है।

'पयस्विनी-विमर्श' इस अध्ययन के लिए दो प्रकार से उपयोगी है। पहला, वह मण्डल जी के वैचारिक व्यक्तित्व, सामाजिक दृष्टि, संस्कृति-बोध, लोक-चेतना, संवादधर्मी स्वभाव और सार्वजनिक लेखन का आधार समझने वाला सहायक ग्रन्थ है। दूसरा, उसकी आलोचनात्मक गद्य-शैली इस पुस्तक के भाषा-निर्णय के लिए मार्गदर्शक रूप में ग्रहणीय है। 'झुकाव का परीक्षण' में भाषा गंभीर, शोधपरक, प्रवाहयुक्त और विवेचनात्मक रहनी चाहिए। वर्तनी, शब्द-चयन और वाक्य-विन्यास में सुगठित हिंदी की एकरूपता बनाये रखना इस

पुस्तक की शैलीगत स्पष्टता के लिए आवश्यक है। जहाँ मूल कविताओं के शीर्षक, लोक-शब्द या उद्धृत पद प्रयुक्त हैं, वहाँ उन्हें मूल रूप में रखा गया है।

'जगदीश प्रसाद मण्डलक काव्य संसार' इस अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण पूर्व-आधार ग्रन्थ रहा है। वह पुस्तक मण्डल जी के काव्य-संग्रहों के परिचयात्मक-विश्लेषणात्मक अध्ययन के रूप में उपयोगी सामग्री उपलब्ध कराती है। उसमें काव्य-संग्रहों के क्रम, प्रकाशन-संदर्भ, प्रमुख रचना-संकेत और काव्यगत आधार पर विचार किया गया है। परंतु प्रस्तुत पुस्तक उस अध्ययन की पुनरावृत्ति नहीं है। 'काव्य संसार' पुस्तकवार काव्य-अवलोकन की दिशा देती है, जबकि 'झुकाव का परीक्षण' प्रवृत्तिवार, मूल्यवार और रचना की दिशावार अध्ययन है। इसी कारण वह पूर्ववर्ती पुस्तक सामग्री-संग्रह, तथ्य-स्मरण और प्रारम्भिक विश्लेषण का स्रोत रहते हुए भी वर्तमान पुस्तक अपनी स्वतंत्र आलोचनात्मक संरचना निर्मित करती है।

'दीपवर्तिका' और मण्डल जी पर केन्द्रित अन्य आलोचनात्मक कृतियाँ भी इस अध्ययन की सहायक स्रोत बनी हैं। उनमें मण्डल जी के बहुआयामी साहित्यिक व्यक्तित्व, गद्य-संसार, सामाजिक सरोकार, उपन्यास के स्थान, कथा-दृष्टि और काव्य-संकेत पर जो विचार उपलब्ध हैं, उनका उपयोग उतना ही किया गया है जितना मण्डल जी की समग्र रचनाधर्मिता की पृष्ठभूमि के लिए आवश्यक था। परंतु इस अध्ययन का मूल केंद्र काव्यधारा है। अतः सहायक स्रोतों का उपयोग संतुलित रूप से किया गया है, जिससे विषय अनावश्यक रूप से मण्डल जी के संपूर्ण साहित्य के सामान्य परिचय में न बदल जाए।

इस अध्ययन की पद्धति प्रवृत्ति-केन्द्रित है। इसमें कृति-विशेष का क्रमिक परिचय देने के स्थान पर विभिन्न कृतियों में बार-बार उभरने वाली अर्थ-दिशाओं पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। उदाहरणार्थ, मिट्टी-पानी, खेत-खरिहान, डोह-डाबर और पोखर से निर्मित ग्रामीण धरातल; किसान-मजदूर के जीवन, माँ-बेटी के संबंधों तथा सामाजिक विभाजन और रूढ़िगत बंधनों से निर्मित सामाजिक संसार; और रात-दिन, जेठ-माघ, मृत्यु-बोध, जिजीविषा, श्रम, विवेक तथा लोकभाषा से जुड़े संकेत विभिन्न काव्य-संग्रहों में भिन्न-भिन्न रूपों में उभरते हैं। प्रवृत्ति-केन्द्रित पद्धति इस आवर्तन को सामान्य पुनरुक्ति नहीं मानती, बल्कि

उसकी अन्तःसंगति, जीवन-स्रोत और मूल्यगत अर्थ की खोज करती है। इस पद्धति से स्पष्ट होता है कि मण्डल जी की काव्यधारा किन जीवनाधारों से निर्मित होती है और किस दिशा की ओर झुकती है।

दूसरी पद्धति जीवन-संदर्भ और पाठ-समीक्षा की संयुक्त पद्धति है। केवल जीवन के आधार पर कविता को समझना अपूर्ण जैसा है। उसी प्रकार केवल पाठ के भीतर सीमित रहकर जीवन-स्रोत की उपेक्षा करना भी उचित नहीं। मण्डल जी की कविता जीवन से उपजी है, परंतु कविता बनते समय वह स्वतंत्र कलात्मक रूप भी ग्रहण करती है। इसलिए इस अध्ययन में जीवन-संदर्भ का उपयोग रचनाबोध की पृष्ठभूमि के रूप में किया गया है, प्रमाण के अंतिम आधार के रूप में नहीं। कविता और गीत का पाठ, बिंब, भाषा, लय, प्रतीक, संबोधन, आवृत्ति और भाव-संरचना अपना स्वतंत्र महत्त्व रखते हैं। इसी कारण इस अध्ययन में जीवन और पाठ, दोनों को एक साथ देखा गया है। परंतु दोनों को एक-दूसरे में विलीन नहीं किया गया है। इसी संतुलित दृष्टि से अध्ययन की दिशा निर्मित हुई है।

तीसरी पद्धति विषयगत समेकन की पद्धति है। मण्डल जी के गीत और कविता-संग्रह अनेक शीर्षकों और अनेक विषयों पर आधारित हैं। कुछ कविताएँ प्रकृति पर केन्द्रित हैं। कुछ समाज पर हैं, कुछ परिवार पर, कुछ मृत्यु पर, कुछ श्रम पर, कुछ मिथकीय संकेतों पर और कुछ आत्ममंथन पर। परंतु गहरे पठन से स्पष्ट होता है कि ये विषय पृथक इकाइयाँ नहीं हैं। ये एक ही जीवन-दृष्टि के विभिन्न रूप हैं। इस अध्ययन में बिखरे हुए प्रतीत होने वाले विषयों को समेकित किया गया है, जिससे स्पष्ट हो सके कि मण्डल जी की कविता की मूल ऊर्जा लोकजीवन, श्रम, समाज, विवेक और मानवीय गरिमा के केंद्र से निकली है।

चौथी पद्धति भाषा-विश्लेषण की पद्धति है। मण्डल जी की कविता केवल कथ्य के आधार पर नहीं पढ़ी जा सकती। उनकी भाषा, ध्वनि, आवृत्ति, बातचीत का लोक-स्वर, संबोधन, लोक-प्रयोग, ग्रामीण शब्दावली और लयात्मक टूटन भी अर्थ-निर्माण करते हैं। इस अध्ययन में भाषा को केवल माध्यम नहीं, काव्य-अनुभव का सक्रिय तत्त्व माना गया है। लोकधर्मी शब्द केवल लोक-सजावट नहीं बनते। वे लेखक की सामाजिक निकटता, अनुभव की धरती और संवेदना की

असली ध्वनि बनते हैं। मण्डल जी का भाषा-विन्यास उनके झुकाव को समझने के लिए एक महत्त्वपूर्ण दरवाज़ा है।

पाँचवीं पद्धति प्रतीक और बिंब की अर्थ-संरचना पर आधारित है। मण्डल जी के पद्य में पेड़-फूल, धान-अन्न, मिट्टी-पानी, धार, खेत-पथार, ऋतु-चक्र, कामधेनु, अकास-गंगा और चाँद जैसे प्रतीक केवल बाहरी वस्तु के संकेत नहीं हैं। ये प्रतीक मिथिला के ग्रामीण जीवन से उपजे हैं और जीवन, श्रम, संघर्ष, समय, अभाव, सामाजिक व्यवस्था और नैतिक प्रश्नों के अर्थ खोलते हैं। इस अध्ययन में प्रतीकों को अलंकारिक सजावट के रूप में नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन के वाहक के रूप में पढ़ा गया है। विशेष रूप से शीर्षक-संकेतों का अर्थग्रहण महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि मण्डल जी के अनेक शीर्षक स्वयं उनकी काव्य-दृष्टि की दिशा खोलते हैं।

छठी पद्धति तुलनात्मक और परंपरा-सापेक्ष पठन की है, परंतु इस पद्धति का उपयोग संयमित रूप से किया गया है। मण्डल जी की काव्यधारा को मैथिली काव्य-परंपरा के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखना आवश्यक है। भक्ति, शृंगार, प्रकृति-काव्य, लोकगीत, आधुनिक चेतना, सामाजिक कविता और ग्रामीण संवेदना, इन सभी धाराओं के बीच मण्डल जी का स्थान क्या है, यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। परंतु तुलना करते समय उद्देश्य दूसरे कवि या परंपरा को घटा-बढ़ाकर देखना नहीं है। उद्देश्य यह देखना है कि मण्डल जी की काव्यधारा किस प्रकार से किसानी जीवन, श्रम-संस्कृति, सामाजिक विवेक और लोकभाषिक ऊर्जा के कारण अपनी अलग पहचान पाती है।

इस अध्ययन की आलोचनात्मक सीमा स्पष्ट करना आवश्यक है। पहली सीमा यह है कि यह पुस्तक मण्डल जी के संपूर्ण साहित्य का अध्ययन नहीं है। उनकी कहानी, उपन्यास, नाटक और वैचारिक गद्य का उल्लेख उतना ही उचित है जितना काव्यधारा का झुकाव समझने के लिए आवश्यक था। यह पुस्तक मूलतः काव्य-संसार के झुकाव का परीक्षण है। दूसरी सीमा यह है कि इसमें प्रत्येक काव्य-संग्रह का पूर्ण परिचय या प्रत्येक कविता पर स्वतंत्र समीक्षा नहीं है। पुस्तकवार संकेत परिशिष्ट में दिये गये हैं, परंतु मुख्य अध्याय प्रवृत्ति, झुकाव और मूल्य-दिशा पर केन्द्रित हैं।

तीसरी सीमा यह है कि पूर्ववर्ती आलोचनात्मक ग्रन्थों के निष्कर्षों को ज्यों-का-त्यों दोहराया नहीं गया है। यदि 'काव्य संसार' पुस्तकवार परिचय देती है, तो यहाँ पुस्तकवार अध्याय नहीं बनाया गया है। यदि 'पयस्विनी-विमर्श' वैचारिक गद्य का आलोचनात्मक अध्ययन है, तो यहाँ उसका वैचारिक संकेत काव्यधारा का झुकाव समझने की पृष्ठभूमि बनता है। यदि 'बायोग्राफी' जीवनवृत्त देती है, तो यहाँ उसके तथ्य जीवन-दिशा समझने के साधन बनते हैं। इस प्रकार स्रोतों का उपयोग किया गया है, परंतु वर्तमान पुस्तक की आलोचनात्मक दृष्टि स्वतंत्र है।

चौथी सीमा यह है कि इस अध्ययन में मूल्यांकन का आधार मात्र भावात्मक प्रशंसा नहीं है। मण्डल जी के प्रति सम्मान इस अध्ययन की प्रेरणा अवश्य है, परंतु आलोचनात्मकता उसकी पद्धति है। सम्मान और आलोचना परस्पर विरोधी नहीं हैं। गहरा सम्मान उस समय सार्थक होता है जब लेखक के कृतित्व को गंभीरता से पढ़ा जाए, उसकी विशिष्टता को चिह्नित किया जाए, उसकी सीमाओं को समझा जाए और उसके साहित्यिक योगदान को सुसंगत तर्क के आधार पर स्थापित किया जाए। इस पुस्तक में प्रशंसा नहीं, विवेचना प्रधान है। भावुकता नहीं, तर्कपूर्ण रचना-पाठ महत्त्वपूर्ण है।

पाँचवीं सीमा यह है कि मण्डल जी की कविता को केवल समाजशास्त्रीय दस्तावेज मानना उचित नहीं। उनकी कविता में समाज है, किसान है, श्रम है। परंतु कविता केवल सूचना नहीं होती। वह भाषा, लय, प्रतीक, ध्वनि, आवृत्ति, संबोधन और बिंब के माध्यम से साहित्यिक रूप ग्रहण करती है। इस अध्ययन में सामाजिक यथार्थ और काव्यात्मक रूप, दोनों पर समान ध्यान दिया गया है। समाज के आशय को देखने के साथ-साथ कविता की शिल्पगत संरचना, आंतरिक बनावट और अभिव्यक्ति-पद्धति को भी परखा गया है।

छठी सीमा यह है कि 'झुकाव' शब्द को संकीर्ण वैचारिक परिधि में नहीं बाँधा गया है। मण्डल जी का झुकाव बहुआयामी है। वे किसान की ओर झुकते हैं, परंतु मात्र कृषि-वर्णन तक सीमित नहीं रहते। वे समाज की ओर झुकते हैं, परंतु समाज-सुधारक उपदेश तक सीमित नहीं रहते। वे लोकभाषा की ओर झुकते हैं, परंतु लोकभाषा को अपरिष्कृत रूप में नहीं छोड़ते। वे परंपरा की ओर

देखते हैं, परंतु परंपरा के प्रश्नहीन रूढ़ रूप को स्वीकार नहीं करते। वे आधुनिक प्रश्न उठाते हैं, परंतु लोकमूलक जीवन से कटते नहीं हैं। इस बहुआयामी स्वरूप को ध्यान में रखकर अध्ययन की आलोचनात्मक संरचना विकसित की गयी है।

स्रोत-व्यवहार में नैतिक सावधानी आवश्यक है। जीवनवृत्त से लिये गये तथ्यों का उपयोग यथासंभव सटीक रूप में किया गया है। पूर्व आलोचनात्मक ग्रन्थों से प्राप्त विचारों को प्रतिलिपि के रूप में नहीं, समेकित पुनर्विचार के रूप में ग्रहण किया गया है। पद्य-पाठ से जो निष्कर्ष बनते हैं, उनका समर्थन कविता, शीर्षक, बिंब, भाषा और पुनरावृत्ति के आधार पर किया गया है। इस प्रकार अध्ययन की पद्धति तथ्य, पाठ और विवेक, तीनों पर आधारित है।

उद्धरण का उपयोग भी संयमित रूप में किया गया है। मण्डल जी के पद्य की लय, भाषा और स्वर समझने के लिए कुछ स्थानों पर मूल पंक्ति उद्धृत करना आवश्यक है। परंतु अत्यधिक उद्धरण अध्ययन को संकलन बना सकता है। अतः उद्धरण को प्रमाण के रूप में रखा गया है और मुख्य विवेचन आलोचनात्मक गद्य के रूप में विकसित किया गया है। इससे पाठक को कविता-संसार के मूल स्वर का परिचय भी मिलता है और विश्लेषण का प्रवाह भी बना रहता है।

पुस्तक की अध्याय-रचना भी इसी पद्धति के अनुरूप है। प्रथम खंड में झुकाव की अवधारणा, स्रोत और पद्धति को स्पष्ट किया गया है। द्वितीय खंड में लेखक के जीवन, सामाजिक कर्म, वैचारिक आग्रह और साहित्यिक दिशा पर विचार किया गया है। तृतीय खंड में काव्य-संसार के विषयगत और संवेदनात्मक झुकाव का परीक्षण किया गया है। चतुर्थ खंड में भाषा, शिल्प, प्रतीक, बिंब और संवादधर्मी संरचना पर विचार हुआ है। पंचम खंड में जीवन और रचना, लेखक और काव्य, लोकधर्मिता और मैथिली काव्य-परंपरा के संबंध पर समेकित निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। अंत में काव्य-संग्रहों के संकेत, स्रोत और लेखन-क्रम को परिशिष्ट के रूप में रखा गया है।

इस प्रकार, प्रस्तुत अध्ययन मात्र परिचयात्मक नहीं है। यह मात्र प्रशंसात्मक नहीं है, मात्र समाजशास्त्रीय नहीं है और मात्र शिल्पगत भी नहीं है। यह एक समेकित आलोचनात्मक अध्ययन है, जिसमें लेखक की जीवन-दिशा और काव्य-दिशा के बीच के अन्तःसंबंध को चिह्नित किया गया है। 'झुकाव' इस

खोज का केंद्रीय शब्द है। इस शब्द के माध्यम से मण्डल जी की काव्यधारा को उसके वास्तविक जीवन-धरातल, सामाजिक सरोकार, भाषिक शक्ति, प्रतीकात्मक संरचना और नैतिक उजास सहित पढ़ने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय में अध्ययन की आधारभूमि भी स्पष्ट की गयी है, जिससे मण्डल जी के जीवन, समाज, विचार और साहित्यिक झुकाव के विश्लेषण के लिए आवश्यक आलोचनात्मक मार्ग प्रशस्त हुआ है। ❑

द्वितीय खंड:

जीवन, समाज, विचार और साहित्यिक झुकाव

3. मण्डल जी का जीवन-झुकाव: निजता से समाज की ओर: किसी लेखक के जीवन का झुकाव उसकी रचना की आंतरिक दिशा को समझने का एक महत्त्वपूर्ण आधार होता है। यह झुकाव केवल बाहरी जीवन की घटनाओं से नहीं बनता। वह अनुभव, संघर्ष, परिवेश, सामाजिक संबंध, कर्म, विचार और मूल्य-बोध की दीर्घ प्रक्रिया से निर्मित होता है। जगदीश प्रसाद मण्डल जी के जीवन को इस दृष्टि से देखने पर स्पष्ट होता है कि उनके जीवन की मूल दिशा निजता से अधिक समाज की ओर रही है। उनका जीवन निजी सुविधा, नौकरी, प्रतिष्ठा, आर्थिक सुरक्षा या आत्मकेन्द्रित उपलब्धि पर केन्द्रित नहीं रहा। वह गाँव, खेत, किसान, श्रम, समाज, लोक-न्याय, सामुदायिक दायित्व और मनुष्य की गरिमा की ओर झुका रहा। इस झुकाव का प्रभाव उनके समग्र साहित्य, विशेषतः काव्य-संसार में गहरे रूप में दिखाई पड़ता है।

मण्डल जी के जीवन का आरंभ मिथिला के उस ग्रामीण परिवेश में हुआ, जहाँ खेत, परिवार, समाज, लोक-रीति और आपसी संबंध जीवन के मूल आधार थे। गाँव की सामाजिक संरचना, संयुक्त परिवार का अनुभव, खेत की अर्थव्यवस्था, जातीय-सामुदायिक संबंध, ग्रामीण संघर्ष और आपसी निर्भरता उनके जीवन-बोध की आरंभिक पाठशाला रहे। पिता-वियोग की घटना उनके जीवन में बहुत कम उम्र में घटित हुई, परंतु इस अभाव के बाद भी परिवार और समाज का सम्मिलित संरक्षण उनके प्रारम्भिक निर्माण का आधार बना। इस परिस्थिति से एक महत्त्वपूर्ण संकेत मिलता है। उनका जीवन केवल व्यक्तिगत परिवार तक सीमित नहीं रहा; गाँव का व्यापक सामाजिक परिवेश भी उनके व्यक्तित्व-निर्माण में सहभागी रहा। इसलिए उनकी रचना में परिवार और समाज का संबंध अलग-अलग नहीं, अन्तःसम्बद्ध रूप में उपस्थित है।

उनकी शिक्षा-प्राप्ति भी केवल व्यक्तिगत उन्नति का साधन नहीं बनी। उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की, परंतु वह शिक्षा उन्हें समाज से दूर नहीं ले गयी। सामान्यतः उच्च शिक्षा ग्रामीण जीवन से अलगाव का कारण बन सकती है, परंतु मण्डल जी के जीवन में यह शिक्षा समाज को अधिक गहराई से समझने का साधन बनी। उनके लिए शिक्षा नौकरी की अनिवार्य सीढ़ी मात्र नहीं रही। वह विचार, विवेक, सामाजिक चेतना और जीवन-विश्लेषण का आधार बनी। इसी कारण शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी उनकी दृष्टि गाँव, खेत और समाज से हट नहीं सकी। वे शहरी सुविधा या प्रशासकीय प्रतिष्ठा की ओर नहीं, लोकजीवन के वास्तविक प्रश्नों की ओर उन्मुख रहे।

मण्डल जी के जीवन में खेती-बाड़ी का अपना विशेष स्थान रहा है। वे कृषिजन्य जीवन से केवल परिचित नहीं रहे, बल्कि उस जीवन को भीतर से जीते रहे। जीविका का संकट और आत्मनिर्भर जीवन-पद्धति का अनुभव उनके भीतर प्रत्यक्ष रूप से बसा रहा। इसी कारण उनके साहित्य में कृषि केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं, जीवन की आधारभूत संरचना के रूप में व्याप्त है। जो लेखक खेत को बाहर से देखता है, उसके लेखन में खेत दृश्य बन सकता है। परंतु जो लेखक खेत के साथ जीता है, उसके लेखन में खेत जीविका, श्रम, संघर्ष और जीवन-मूल्य का आधार बन जाता है। मण्डल जी के जीवन और साहित्य का झुकाव इसी दूसरे धरातल पर स्थित है।

निजता से समाज की ओर मण्डल जी के झुकाव का एक गहरा प्रमाण उनका समाजसेवी जीवन रहा है। उनके जीवन की दीर्घ अवधि समाज के प्रश्नों में बीती। गाँव की समस्या, जमीन का प्रश्न, सामुदायिक संघर्ष, किसान का हित, समाज का न्याय, रूढ़ि और सामन्ती व्यवहार का विरोध, ये सब उनके जीवन के केवल देखे-सुने प्रसंग नहीं थे। ये भोगे हुए अनुभव थे। समाज के संघर्ष में उतरना सहज नहीं होता। वहाँ विरोध मिलता है, मुकदमा मिलता है, व्यक्तिगत संकट आता है। समय और श्रम का अपार खर्च होता है, परिवार पर भी प्रभाव पड़ता है। परंतु मण्डल जी इस मार्ग से कभी पीछे नहीं हटे। इसी कारण उनकी सामाजिक दृष्टि केवल सैद्धांतिक नहीं, संघर्षजन्य रही।

केस-मुकदमे और जेल-यात्रा के प्रसंग मण्डल जी के जीवन के निजी कष्ट

अवश्य थे, परंतु उन्हें केवल व्यक्तिगत त्रासदी के रूप में देखना पर्याप्त नहीं। ये प्रसंग दिखाते हैं कि सामाजिक दायित्व का मार्ग कितना कठोर हो सकता है। समाज के पक्ष में खड़े रहने की कीमत चुकानी पड़ती है। इसी अनुभव के कारण उनके साहित्य में संघर्ष का स्वर भावुक कल्पना नहीं, जीवन-सत्य के रूप में आता है। वे संघर्ष का दुःख समझते हैं, संघर्ष की थकान जानते हैं, अन्याय का भार समझते हैं और उसके साथ संघर्ष की नैतिक गरिमा भी समझते हैं। इसी लिए उनके पद्य में दुःख है, पर निराशा नहीं; चोट है, पर हार की स्वीकृति नहीं; टूटन है, पर मनुष्य अबोध या निर्बल नहीं।

मण्डल जी के जीवन का मूल झुकाव समझने के लिए यह भी महत्त्वपूर्ण है कि वे अपने को समाज से अलग स्वतंत्र 'प्रतिष्ठित व्यक्ति' बनाने का प्रयास नहीं करते। कई बार लेखक की सामाजिक स्थिति उसके साहित्य को ऊँचे मंच से बोलते हुए उपदेशमय बना देती है। मण्डल जी के संदर्भ में ऐसी दूरी नहीं दिखाई पड़ती। उनके यहाँ गाँव का गरीब गृहस्थ, किसान, मजदूर, स्त्री, वृद्ध, बालक, संघर्षशील मनुष्य और लोकसमाज कोई बाहरी विषय नहीं। वे सब उनके अनुभव-संबंध का हिस्सा रहे। इसी कारण उनके लेखन में लोकजीवन के प्रति कृत्रिम सहानुभूति नहीं, आत्मीय सहभागिता मिलती है।

उनके जीवन के झुकाव में आत्मनिर्भरता केंद्रीय तत्त्व है। नौकरी की ओर न जाकर कृषि और समाज के बीच जीवन बिताना केवल आर्थिक निर्णय नहीं, मूल्यगत निर्णय भी है। आत्मनिर्भरता मण्डल जी की दृष्टि में केवल निजी स्वावलम्बन नहीं, सामुदायिक जीवन का आधार है। जो समाज श्रम छोड़कर परनिर्भर बनता है, उसके भीतर नैतिक शक्ति घटती है। जो मनुष्य अपने श्रम, विवेक और समाज के साथ जीता है, वह जीवन के कठिन समय में भी संभलकर खड़ा रहता है। इसी कारण उनके पद्य में श्रम की गरिमा, कर्मशीलता, खेत का आधार, अन्न की नैतिकता और आत्मबल का स्वर बार-बार आता है।

निजता से समाज की ओर झुकाव का अर्थ यह नहीं कि मण्डल जी के जीवन में निजी अनुभव का अभाव रहा। निजी अनुभव अवश्य रहा। परिवार, पिता का वियोग, गृहस्थ जीवन, आर्थिक संघर्ष, मानसिक तनाव, आशा-निराशा और संबंधों की जटिलता उनके जीवन में निजी अनुभव की उपस्थिति प्रमाणित करती

है। परंतु उनकी विशेषता यह है कि निजी अनुभव भी समाज के व्यापक अर्थ में बदल जाता है। व्यक्तिगत अभाव समाज के अभाव को समझने का आधार बनता है। पारिवारिक अनुभव लोक-परिवार का प्रश्न बन जाता है। किसान की निजी चिंता सामूहिक कृषि-संकट का प्रतीक बनती है। दुःख वैयक्तिक न रहकर लोकानुभव बन जाता है। यह परिवर्तन साहित्यिक सर्जना की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है।

उनके लेखन का आरंभ जीवन के उत्तरार्द्ध में हुआ। यह बात भी उनका झुकाव समझने के लिए आवश्यक है। उनकी कविता युवावस्था के भावुक आवेग से उपजा साहित्य नहीं है। यह दीर्घ जीवनानुभव, सामाजिक संघर्ष, कृषि-संस्कार और विचार की परिपक्वता से विकसित साहित्य है। जब मनुष्य जीवन के अनेक रूपों का अनुभव कर लेता है, तब उसकी रचना में अनुभव का घनत्व आ जाता है। अभाव, संघर्ष, श्रम, समाज, अन्याय, आशा, टूटन, सामुदायिक संबंध और मृत्यु-बोध उसकी चेतना में गहरे रूप से बस जाते हैं। मण्डल जी के काव्य-संसार में यह अनुभव-घनत्व बार-बार दिखाई देता है।

मण्डल जी के जीवन के झुकाव में मिथिला की मिट्टी-पानी से अटूट संबंध रहा है। मिथिला उनके लिए केवल भौगोलिक पहचान नहीं, जीवन की पद्धति रही है। गाँव के पोखर, इनार, चौर, खेत, बाड़ी, पर्व-त्योहार, लोक-संस्कार, कृषक-दुःख, श्रम की रीति, सामुदायिक संबंध और भाषिक संस्कार, ये सब उनके व्यक्तित्व के घटक रहे। इसी कारण उनकी कविता में मिथिला बाहरी विषय के रूप में नहीं, आंतरिक धरातल के रूप में उपस्थित है। वे मिथिला को सजावटी गौरव के शब्दों से नहीं, उसके सुख-दुःख, संकट-संघर्ष और लोकजीवन के यथार्थ से पहचानते हैं।

मण्डल जी के जीवन-झुकाव का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी रहा है कि वे समाज में व्याप्त अन्याय तो देखते हैं, पर समाज से निराश होकर पलायन नहीं करते। समाज की विकृति पर प्रहार करना, पर समाज की संभावना पर विश्वास रखना, यह संतुलन उनके व्यक्तित्व की विशेषता रहा। वे रूढ़ि-विरोधी हैं, पर लोक-संस्कार-विरोधी नहीं। वे पाखंड पर चोट करते हैं, पर संस्कृति के सार को भी मानते हैं। वे असमानता को चिह्नित करते हैं, पर सामुदायिक जीवन की

आवश्यकता को नकारते नहीं। इसी संतुलन से उनके साहित्य का नैतिक धरातल निर्मित होता है।

इस अध्याय का उद्देश्य मण्डल जी के जीवन की घटनाओं का संग्रह प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि उस घटना-संसार से निर्मित जीवन-दिशा को पहचानना है। उनका जीवन बार-बार समाज की ओर मुड़ता है। शिक्षा उन्हें समाज से दूर नहीं करती, समाज को समझने का विवेक देती है। खेती निजी पेशा न रहकर श्रम-संस्कृति का अनुभव बनती है। समाजसेवा व्यक्तिगत प्रतिष्ठा नहीं, लोक-दायित्व बनती है। केस-मुकदमा निजी आपत्ति नहीं, सामाजिक संघर्ष की कीमत बनता है। लेखन निजी अभिव्यक्ति नहीं, लोकजीवन का रचनात्मक साक्ष्य बनता है। इन सबको मिलाकर कहा जा सकता है कि जगदीश प्रसाद मण्डल जी के जीवन का मूल झुकाव निजता से अधिक समाज की ओर है।

इस जीवन-झुकाव का प्रतिफल उनके काव्य-संसार में अनेक रूपों में देखा जा सकता है। कविता में जो किसान आता है, वह जीवन में देखा हुआ किसान है। जो गाँव आता है, वह स्मृति की कथा नहीं, जीता हुआ समाज है। जो श्रम आता है, वह बाहरी आदर्श नहीं, जीवन का यथार्थ है। जो सामाजिक प्रतिरोध आता है, वह सैद्धांतिक घोषणा नहीं, अनुभवजन्य विवेक है। जो लोकभाषा आती है, वह कृत्रिम शैली नहीं, जीवित संबंध की ध्वनि है। इसलिए मण्डल जी की काव्यधारा के झुकाव को समझने के लिए उनके जीवन के झुकाव को समझना पहली और आवश्यक शर्त है।

4. मण्डल जी का सामाजिक झुकाव: गाँव, किसान, श्रम और लोक-न्याय: जगदीश प्रसाद मण्डल जी के सामाजिक झुकाव का केंद्र गाँव है, परंतु यह गाँव केवल ग्रामीण दृश्य नहीं। यह खेत के श्रम, किसान-मजदूर की विवशता, स्त्री की ममता, गरीब गृहस्थ के संघर्ष और लोक-संस्कार की धारा से बना गाँव है। जातीय-सामुदायिक संबंधों की जटिलता, सामाजिक असंतुलन और न्याय-अन्याय के अनुभव भी इसे गहरा बनाते हैं। मण्डल जी गाँव को न आदर्शलोक मानते हैं, न पूर्ण अँधेरे का संसार। वे गाँव की जीवन-शक्ति और गाँव की विकृति, दोनों देखते हैं। इसी द्वन्द्वात्मक दृष्टि के कारण उनका सामाजिक

झुकाव अधिक विश्वसनीय और गहरा बनता है।

मण्डल जी के अनुभव का मूल धरातल मिथिला का ग्रामीण समाज है। इस समाज में खेत है, पानी है, पोखर है, इनार है, बरसात है, बाढ़ है, सूखा है। जातीय संरचना, परिवार की परंपरा, लोक-रीति, सामूहिकता और परस्पर निर्भरता भी है। साथ ही विघटन, दरार, असमानता और विवेकहीनता भी उपस्थित है। लेखक इन सबको बाहर से देखने वाला पर्यवेक्षक नहीं है। वह इस समाज के भीतर रहा, उसका संघर्ष भोगा, उसकी भाषा सुनी, उसकी लोक-स्मृति से बना और उसके प्रश्नों से जूझा हुआ सर्जक है। इसलिए उसकी रचना में गाँव का चित्रण जीवित, आत्मीय और बहुस्तरीय मिलता है।

उनका सामाजिक झुकाव केवल दया-भावना तक सीमित नहीं है। दया ऊपर से नीचे की ओर आती है; लोक-न्याय भीतर से उठता है। मण्डल जी की रचना में गरीब, किसान, मजदूर और उपेक्षित लोक के प्रति करुणा अवश्य अनुभव होती है, पर वह करुणा मुख्य स्वर नहीं। मुख्य स्वर सम्मान, सहभागिता और न्याय का है। किसान को वे करुणा का पात्र बनाकर नहीं छोड़ते। वे उसके श्रम की महत्ता, धैर्य, संघर्ष, विवेक और समाज की जीवन-व्यवस्था में उसकी केंद्रीय भूमिका को सामने लाते हैं। मजदूर का श्रम मात्र कठिनाई नहीं, समाज-निर्माण की शक्ति बनता है। गरीब गृहस्थ मात्र अभाव का प्रतीक नहीं, नैतिक दृढ़ता का वाहक भी बनता है।

मण्डल जी के सामाजिक झुकाव की धुरी किसान है। मिथिला के गाँव की अर्थव्यवस्था, परिवार की संरचना, सामाजिक संबंध और लोक-संस्कार का गहरा संबंध कृषि से रहा है। खेत में अन्न उपजता है, पर उस अन्न के साथ श्रम, ऋतु, प्रतीक्षा, धैर्य और सामुदायिक जीवन भी उपजता है। मण्डल जी किसान के जीवन को इसी संपूर्णता में देखते हैं। धान का बीज, चौर का पानी, सूखा पोखर, अगहन-पूस और जेठ का ऋतु-अनुभव, बाढ़ की मार और सूखा की चिंता उनके पद्य में किसान के जीवन-संसार के तत्त्व के रूप में समाहित हैं। इसी कारण उनके काव्य में किसान और किसानी केवल विषय के रूप में नहीं, सामाजिक सत्य के रूप में उपस्थित हैं।

श्रम उनकी सामाजिक दृष्टि का आधारभूत मूल्य है। श्रम के बिना जीवन,

समाज और संस्कृति टिक नहीं सकते, यह भाव उनकी रचना में गहरे रूप से उपस्थित है। श्रमशील मनुष्य का सम्मान उनकी काव्यधारा का नैतिक केंद्र है। जो हाथ खेत जोतता है, जो देह पानी-कीचड़ में उतरती है, जो परिवार संभालता है और जो समाज की दिनचर्या चलाता है, वह मण्डल जी की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण है। जो मनुष्य कम साधनों में जीवन बचाता है, उसे मण्डल जी गरिमा के साथ अपने साहित्य में स्थान देते हैं। यह दृष्टि श्रम को केवल आर्थिक क्रिया नहीं मानती। वह श्रम को मानवीय मूल्य के स्रोत के रूप में देखती है।

लोक-न्याय की धारणा मण्डल जी के सामाजिक झुकाव में विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। न्याय उनके लिए केवल अदालत का निर्णय या कानून का शब्द नहीं है। न्याय समाज के भीतर मनुष्य की मर्यादा, श्रम का मूल्य, सामुदायिक संतुलन, परस्पर सम्मान और विवेकपूर्ण व्यवहार में स्थित है। जब समाज में जाति, वर्ग, लिंग, संपत्ति, प्रतिष्ठा या रूढ़ि के आधार पर अन्याय होता है, तब सामाजिक संतुलन टूटता है। मण्डल जी की रचना इस टूटन को चिह्नित करती है। वे लोक-न्याय की आवाज़ को सक्रिय करना चाहते हैं। इसी कारण उनकी कविता में प्रश्न, चेतावनी, पुकार, संवाद और प्रतिरोध का स्वर उपस्थित रहता है।

गाँव की सामाजिक संरचना में सामूहिकता और विघटन दोनों उपस्थित हैं। मण्डल जी की काव्य-दृष्टि इस द्वंद्व की उपेक्षा नहीं करती, बल्कि उसमें निहित सामाजिक अर्थ को उजागर करती है। एक ओर गाँव में संबंधों की आत्मीयता, परस्पर सहयोग, लोक-संस्कार, पर्व-त्योहार, पारिवारिक संबद्धता और सामुदायिक स्मृति हैं। दूसरी ओर जातीय दूरी और वर्गीय अहंकार से निर्मित सामाजिक घेराबंदी, रूढ़ियाँ, पाखंड, पारिवारिक संबंधों की टूटन, लोभ और असमानता भी उपस्थित हैं। मण्डल जी इस द्वंद्व को गहरे सामाजिक बोध के साथ ग्रहण करते हैं। वे न तो गाँव की अंधप्रशंसा करते हैं और न ही उसे पूर्णतः नकारते हैं। वे गाँव को उसके सत्य सहित स्वीकार करते हैं और उसके भीतर परिवर्तन की संभावना खोजते हैं।

उनका सामाजिक झुकाव लोक-संस्कार के सम्मान से जुड़ा है, परंतु वे लोक-संस्कार के नाम पर रूढ़ि को स्वीकार नहीं करते। यह भेद अत्यंत

महत्त्वपूर्ण है। लोक-संस्कार समाज के सामूहिक अनुभव का वाहक होता है, पर जब वह विवेकहीन रूढ़ि बन जाता है, तब वह मनुष्य की स्वतंत्रता और न्याय पर आघात करता है। मण्डल जी लोकजीवन की गन्ध, भाषा, रीति, परिवार, संस्कार और सामुदायिकता को महत्त्व देते हैं। पर वे अंधविश्वास, पाखंड, अन्याय और दमन का समर्थन नहीं करते। यह संतुलन उनकी सामाजिक दृष्टि की परिपक्वता को प्रमाणित करता है।

गरीब गृहस्थ और उपेक्षित समुदाय उनके साहित्य में सम्मान के साथ प्रवेश करते हैं। वे सब केवल करुणा जगाने वाले पात्र नहीं। वे जीवन के वास्तविक शिक्षक के रूप में भी दिखाई पड़ते हैं। साधारण लोक के भीतर श्रम है, धैर्य है, सहनशीलता है, जुगाड़ की बुद्धि है, जीवन बचाने की कला है। कठिन परिस्थिति में नैतिकता बचाने का साहस भी है। मण्डल जी का सामाजिक झुकाव इस साधारण जीवन की असाधारण शक्ति को चिह्नित करता है। इसी कारण उनकी रचना में 'साधारण' शब्द महत्त्वहीनता नहीं, लोकजीवन के वास्तविक आधार को सूचित करता है।

स्त्री का स्थान भी इस सामाजिक झुकाव में महत्त्वपूर्ण है। मण्डल जी की सामाजिक दृष्टि में माँ, बेटी, बहन, पत्नी, बहू और गृहस्थ स्त्री समाज की परिधीय पात्र नहीं। वे परिवार के श्रम, संस्कार, सहनशीलता, संबंध और नैतिक धरातल की वाहक हैं। ग्रामीण समाज की असली संरचना में स्त्री का श्रम और भावनात्मक दायित्व अत्यंत गहरा है। मण्डल जी का साहित्य इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं। उनका सामाजिक झुकाव स्त्री-संवेदना को लोकजीवन के केंद्रीय हिस्से के रूप में देखता है।

मण्डल जी के सामाजिक झुकाव में भाषा भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रखती है। समाज के भीतर से बोलना, समाज की भाषा में बोलना और समाज के अनुभव की लय को अपनी अभिव्यक्ति में ग्रहण करना, ये तीनों बातें उनकी रचना में स्पष्ट रूप से मिलती हैं। लेखक जब लोकभाषा से कट जाता है, तब लोकजीवन पर लिखा हुआ साहित्य भी बाहरी प्रतीत होने लगता है। मण्डल जी की भाषा में गाँव की ध्वनि, लोक-संबोधन, कहावतें, श्रम के शब्द, कृषिजन्य संकेत, पारिवारिक संबोधन और सामाजिक बातचीत का सहज खुरदरापन उपस्थित है। लोकजीवन

से भाषा का यह गहरा संबंध भी उनके सामाजिक झुकाव को प्रमाणित करता है।

लोक-न्याय का प्रश्न उनके काव्य-संसार में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, दोनों रूपों में आता है। कहीं वे किसान के कठिन श्रम की उपेक्षा पर प्रश्न उठाते हैं, कहीं समाज के रूढ़ि-बंधन पर। कहीं परिवार के विघटन पर प्रश्न है, कहीं अंधविश्वास पर। कहीं रूढ़ि पर प्रश्न है, कहीं अभाव की संरचना पर। पर ये प्रश्न थोपे हुए विचार के रूप में नहीं आते। वे जीती हुई परिस्थितियों से उपजे हुए प्रतीत होते हैं। इसी कारण उनका प्रभाव अधिक स्वाभाविक है।

मण्डल जी की दृष्टि में समाज कोई स्थिर वस्तु नहीं, बल्कि निरंतर बनने-बिगड़ने वाली प्रक्रिया है। जब श्रम का सम्मान घटता है, किसान परदेशी बनता है, पोखर सूख जाता है, खेती का संकट बढ़ता है, पारिवारिक संबंध शिथिल होते हैं और समाज में विभाजनकारी दीवारें ऊँची होने लगती हैं, तब उसकी जीवन-शक्ति कमजोर पड़ती है। परंतु जब मनुष्य मिलकर सोचता है, श्रम का मूल्य समझता है, लोक-विवेक जगाता है, स्त्री के श्रम का सम्मान करता है और गरीब की आवाज़ सुनता है, तब समाज फिर जीवन की दिशा पकड़ने लगता है। मण्डल जी का सामाजिक झुकाव पुनर्निर्माण की इसी संभावना में विश्वास व्यक्त करता है।

मण्डल जी की सामाजिक दृष्टि में किसान और मजदूर को अलग-अलग वर्गों में बाँटकर नहीं देखा गया है। ग्रामीण जीवन में किसान स्वयं मजदूर भी है, गृहस्थ भी, ऋतु पर निर्भर जीव भी और सामाजिक प्राणी भी। उसका श्रम खेत में है, परिवार में है, समाज में है। इसी कारण मण्डल जी किसान को केवल उत्पादन की इकाई नहीं मानते। वे उसे लोक-संस्कृति का संवाहक मानते हैं, परिवार का आधार मानते हैं, और उसके साथ अन्न के निर्माता तथा संघर्षशील मनुष्य के रूप में भी देखते हैं। यह दृष्टि उनके काव्य को साधारण कृषि-वर्णन से अलग करती है।

मण्डल जी के सामाजिक झुकाव का एक आधार सामूहिक स्मृति भी है। गाँव के पर्व-त्योहार, लोकगीत, गंगा-स्नान, गोधन पूजा, चौरचन, विवाह-संस्कार, खेत का ऋतु-क्रम, पोखर का उपयोग और परिवार की परंपरा मात्र

संस्कृति-सामग्री नहीं। ये सब लोकसमाज की स्मृति-संरचना हैं। पर स्मृति तभी सार्थक हो सकती है जब वह वर्तमान जीवन को बल दे। यदि स्मृति जड़ पाखंड में बदल जाती है, यदि संस्कार मनुष्य को बाँध देते हैं, यदि परंपरा न्याय को रोक देती है, तब मण्डल जी उसे चुनौती देते हैं। इसी कारण उनका सामाजिक झुकाव स्मृतिमूलक होते हुए भी विवेकहीन नहीं है।

उनकी रचना में सामाजिक प्रतिरोध का स्वर कठोर होते हुए भी संवादधर्मी है। वे समाज से कटकर समाज पर प्रहार नहीं करते। वे समाज के भीतर रहकर समाज से प्रश्न करते हैं। उनके प्रश्न आरोप के रूप में नहीं, जगाने के प्रयत्न के रूप में हैं। वे कहते हैं- सोचो, देखो, समझो, अपने मन को ठगो मत, नज़र बदलो, श्रम का मान करो, गाँव का आधार बचाओ, लोकसंसार के असली संकट को पहचानो। इस संवादधर्मी प्रतिरोध के कारण उनकी सामाजिक कविता उपदेशात्मक नहीं रह जाती, लोक-विवेक का स्वर बन जाती है।

मण्डल जी के सामाजिक झुकाव में नैतिक साहस भी स्पष्ट दिखाई देता है। समाज के दोषों को इंगित करना सहज नहीं, विशेषतः उस समाज के, जिससे लेखक स्वयं जुड़ा हो। परंतु सच्चा लोक-प्रेम दोषों पर पर्दा नहीं डालता; वह उनके उपचार की दिशा खोजता है। मण्डल जी गाँव से प्रेम करते हैं, इसलिए उसकी आंतरिक दरारों को उजागर करते हैं। वे किसान के पक्ष में हैं, इसलिए कृषि-संकट को सामने लाते हैं। लोक-संस्कारों को महत्त्व देते हैं, इसलिए उनमें व्याप्त रूढ़ियों पर प्रहार करते हैं। सामाजिक एकता को आवश्यक मानते हैं, इसलिए समाज के भीतर की विभाजनकारी संरचनाओं पर प्रश्न उठाते हैं। इस प्रकार उनका सामाजिक झुकाव आलोचनात्मक प्रेम का रूप ग्रहण करता है।

इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि मण्डल जी का सामाजिक झुकाव गाँव, किसान, श्रम और लोक-न्याय में केन्द्रित है। पर यह केंद्र संकीर्ण नहीं, व्यापक सामाजिक अर्थ से जुड़ा है। उनकी दृष्टि में गाँव से समाज की संरचना खुलती है। किसान से श्रम का मूल्य स्पष्ट होता है। श्रम से मनुष्य की गरिमा प्रतिष्ठित होती है। लोक-न्याय से सामाजिक संतुलन की आवश्यकता सामने आती है। भाषा से लोकध्वनि सुनाई पड़ती है। परिवार से संस्कार का धरातल बनता है। संघर्ष से नैतिक साहस की पहचान होती है। इन सभी तत्त्वों के

सम्मिलित रूप से उनकी सामाजिक दृष्टि निर्मित हुई है। इस सामाजिक दृष्टि के बिना उनकी काव्यधारा का मूल स्वर अधूरा समझ में आता है। मण्डल जी की कविता उस समाज की कविता है जो टूटता भी है, और जिसके भीतर पुनः बनने की संभावना बची रहती है।

5. मण्डल जी का वैचारिक झुकाव: श्रम, विवेक, आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय: जगदीश प्रसाद मण्डल जी का वैचारिक झुकाव उनके जीवन-अनुभव से अलग नहीं है। उनके लिए विचार पुस्तक से उठाया हुआ सिद्धांत मात्र नहीं, जीवन की कसौटी पर परखा हुआ सत्य है। उन्होंने जो देखा, भोगा, अपने श्रम से समझा और समाज के बीच अनुभव किया, उसी से उनके विचार की दिशा बनी है। यही कारण है कि उनकी वैचारिकता घोषणात्मक रूप में नहीं, अनुभवजन्य रूप में प्रकट होती है। वे विचार को जीवन से जोड़ते हैं, जीवन को श्रम से, श्रम को मनुष्य की गरिमा से, और मनुष्य की गरिमा को सामाजिक न्याय से। उनकी काव्यधारा में ये चारों तत्त्व बार-बार प्रकट होते हैं: श्रम, विवेक, आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय।

मण्डल जी के वैचारिक धरातल में श्रम का स्थान सर्वप्रथम है। श्रम उनके लिए जीविका मात्र नहीं, मनुष्यता का आधार है। जो मनुष्य श्रम करता है, वह जीवन के वास्तविक अर्थ से जुड़ता है। खेत में उतरने वाला किसान, पानी में खड़ा मजदूर, घर संभालने वाली स्त्री, परिवार का भार उठाने वाला गृहस्थ और समाज के लोककार्य में जुटा साधारण मनुष्य, ये सब मण्डल जी की दृष्टि में जीवन के असली निर्माता हैं। उनके साहित्य में श्रमहीन प्रतिष्ठा का सम्मान नहीं। वहाँ श्रमसिद्ध गरिमा का मान है। इसी कारण उनकी कविता में किसान और मजदूर दया-पात्र नहीं, जीवन और समाज की आधार-शक्ति के रूप में उपस्थित हैं।

श्रम के इस मूल्य-बोध में कृषिजन्य जीवन का गहरा अनुभव निहित है। मिथिला के ग्रामीण समाज में खेत, पानी, धान, चौर, चाँचर, पोखर, इनार, ऋतु और पारिवारिक जीवन एक-दूसरे से जुड़े हैं। खेत मात्र जमीन नहीं; वह श्रम का खुला पन्ना है। धान मात्र अन्न नहीं; वह पसीना, प्रतीक्षा, ऋतु-संघर्ष और परिवार

की आशा का फल है। किसान मात्र उत्पादन करने वाला व्यक्ति नहीं। वह समाज का पेट, परिवार का आधार, लोक-संस्कार का वाहक और धरती से मनुष्य के संबंध का प्रतिनिधि है। मण्डल जी का वैचारिक झुकाव इस श्रमशील जीवन को सामाजिक सम्मान देने का आग्रह करता है।

उनके काव्य-संसार में आलस्य, परनिर्भरता, दिखावा, पाखंड और उपभोगवादी मानसिकता श्रम की विरोधी प्रवृत्तियों के रूप में सामने आते हैं। मण्डल जी की दृष्टि में जो समाज श्रम का मान छोड़ देता है, वह भीतर से निर्बल होने लगता है। जो जीवन उत्पादन से कटकर केवल उपभोग की ओर बढ़ता है, वह आत्मनिर्भर नहीं रह पाता। मण्डल जी ऐसे समाज पर प्रश्न उठाते हैं। उनके लिए श्रम केवल जीविका नहीं, मनुष्य को धरती, समाज और अपने उत्तरदायित्व से जोड़ने वाली नैतिक शक्ति है। श्रम मनुष्य को विवेक देता है, धैर्य सिखाता है और आत्मसम्मान का आधार बनता है। इसी कारण श्रम से कट गया समाज धीरे-धीरे स्मृतिहीन, परनिर्भर और असंतुलित बनता है।

श्रम के साथ मण्डल जी का वैचारिक झुकाव विवेक की ओर अभिमुख होता है। विवेक उनके लिए केवल शिक्षा या बुद्धि तक सीमित नहीं है। वह जीवन, समाज और परिस्थिति को सही ढंग से परखने की क्षमता है। समाज में परंपरा है, धर्म है, संस्कार है, जाति-व्यवस्था है, परिवार के बंधन हैं, आर्थिक संबंध हैं और राजनीतिक प्रभाव भी है। परंतु इन सबको बिना विवेक स्वीकार कर लेने से मनुष्य पाखंड, रूढ़ि और अन्याय में फँस जाता है। मण्डल जी की कविता बार-बार मनुष्य को सोचने, पूछने, अपने मन के छल को पहचानने और समाज के अँधेरे में उजाला खोजने का आग्रह करती है।

विवेक का अर्थ उनकी रचना में केवल विद्रोह नहीं है। विवेक का अर्थ है, सार और असार का भेद करने की क्षमता। लोक-संस्कार सार है, पर रूढ़ि असार। धर्म के भीतर करुणा और नैतिकता है, पर पाखंड असार है। गाँव आत्मीयता देता है, पर जातीय संकीर्णता समाज के लिए विनाशकारी है। परिवार ममता देता है, पर लोभ और दमन उसे खोखला बनाते हैं। परंपरा अनुभव का सञ्चय है, पर जड़ता समाज की गति रोकती है। मण्डल जी का वैचारिक झुकाव इसी भेद-बुद्धि का आग्रह करता है। इसलिए वे अंधकार के कवि नहीं हैं। वे

विवेकपूर्ण परीक्षण के कवि हैं।

उनकी काव्यधारा में प्रश्नवाचकता इसी विवेक का काव्यात्मक रूप है। 'क्यों', 'कैसे', 'आप ही कहिए' और 'किसे कहें' जैसे प्रश्न मात्र शैलीगत उपकरण नहीं हैं; वे पाठक के भीतर सोच जगाते हैं। जब कवि समाज में खड़ी विभाजनकारी दीवारों, गाँव से डरने की मानसिकता, पोखर के मान और बेटी के प्रति समाज की दृष्टि को प्रश्नांकित करते हैं, तब वे समाज को विचार के कठघरे में खड़ा कर देते हैं। ये विवेकधर्मी प्रश्न कविता को उपदेश के स्थान पर आत्ममंथन की प्रक्रिया बना देते हैं।

मण्डल जी की वैचारिकता आत्मनिर्भरता से गहरे रूप में जुड़ी है। आत्मनिर्भरता उनके लिए मात्र आर्थिक स्वावलम्बन का शब्द नहीं; वह जीवन की नैतिक स्थिति है। जो व्यक्ति और समाज अपने श्रम, अपनी मिट्टी, अपने पानी, अपने चास-बास, अपनी लोकबुद्धि, अपनी भाषा और अपने सामाजिक दायित्व से कट जाता है, वह भीतर से परनिर्भर हो जाता है। परनिर्भरता केवल आर्थिक कमजोरी नहीं, मानसिक और सांस्कृतिक कमजोरी भी है। मण्डल जी की कविता आत्मनिर्भर जीवन के पक्ष में खड़ी होती है, क्योंकि आत्मनिर्भरता के बिना मनुष्य की गरिमा सुरक्षित नहीं रह पाती।

कृषि और आत्मनिर्भरता के बीच का संबंध उनकी विचारधारा में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। चास-बास मात्र जीविका नहीं, जीवन-पद्धति है। चास-बास में मिट्टी-पानी का संबंध, श्रम का अनुशासन, ऋतु का बोध, परिवार का सहकार, अन्न का मूल्य, पशुधन की भूमिका और समाज की सामुदायिक संरचना एक साथ जुड़ी है। जब चास-बास टूटता है, तब केवल खेती नहीं टूटती। गाँव का आर्थिक आधार, लोक-संस्कार की स्वाभाविकता, परिवार का श्रम-संतुलन और आत्मसम्मान भी टूटता है। इसी कारण मण्डल जी का वैचारिक झुकाव चास-बास को जीवन के आधार के रूप में देखता है।

परदेश का प्रश्न भी इसी आत्मनिर्भरता के बोध से जुड़ा है। किसान या युवा जब विवश होकर परदेश जाता है, तब यह केवल रोजगार की घटना नहीं। यह अपनी मिट्टी-पानी से कटने, परिवार से दूर होने, भाषा और लोक-संस्कार से

अलगाव, और गाँव की आर्थिक संरचना के कमजोर होने का संकेत है। मण्डल जी परदेश की पीड़ा को केवल भावुक स्मृति तक सीमित नहीं रखते। वे उसके सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक कारण को भी देखते हैं। यदि गाँव में श्रम का अवसर, खेती का सम्मान, जल-व्यवस्था की स्थिरता और सामुदायिक अर्थव्यवस्था कमजोर पड़ेगी, तो परदेश बाध्यता बनेगा। इस बोध में आत्मनिर्भर समाज की आवश्यकता स्पष्ट है।

मण्डल जी का वैचारिक झुकाव सामाजिक न्याय के पक्ष में स्पष्ट और स्थिर है। सामाजिक न्याय उनके लिए अदालत और शासन तक सीमित कोई औपचारिक अवधारणा नहीं, बल्कि लोकजीवन में मनुष्य के सम्मान का प्रश्न है। किसान के श्रम का मूल्य, स्त्री के अदृश्य श्रम का मान, गरीब की आवाज़ और जाति-भेद का विरोध इसके प्रमुख घटक हैं। परिवार के भीतर न्याय, विभाजनकारी सामाजिक बंधनों से मुक्ति, पाखंड का अस्वीकार और श्रमशील मनुष्य की गरिमा भी उनकी न्याय-दृष्टि के आधारभूत तत्त्व हैं। उनकी कविता उस समाज के पक्ष में है, जहाँ मनुष्य का मूल्य धन, जाति, पद या दिखावे से नहीं, बल्कि श्रम, व्यवहार, विवेक और मनुष्यता से तय होता है।

सामाजिक न्याय का यह आग्रह उनकी कविता को प्रतिरोधधर्मी बनाता है। परंतु यह प्रतिरोध हिंसक या विनाशकारी नहीं है। मण्डल जी समाज से घृणा नहीं करते। वे समाज में व्याप्त अँधेरा चिह्नित करते हैं। वे समाज के दमनकारी रूप पर प्रहार करते हैं, पर समाज की संभावना पर विश्वास रखते हैं। इसी कारण उनका प्रतिरोध विवेक, संवाद और आत्मालोचना पर आधारित है। वे पूछते हैं, टोकते हैं, उदाहरण देते हैं और लोकबुद्धि को जगाते हैं। इसलिए उनका प्रतिरोध जीवन-निर्माणकारी रूप धारण करता है।

उनके वैचारिक झुकाव में साम्यवादी, समाजवादी और लोक-न्यायधर्मी संवेदना से निकटता देखी जा सकती है, परंतु उनकी काव्य-दृष्टि को किसी एक राजनीतिक विचारधारा तक सीमित करना उचित नहीं। उनकी विचारधारा जीवन से छनकर आयी है। श्रम का सम्मान, किसान की पक्षधरता, शोषण-विरोध, सामूहिकता, सामाजिक न्याय और परनिर्भरता-विरोध अवश्य उनके लेखन में है। पर ये सब वैचारिक पर्चा नहीं बनते। वे लोकभाषा के माध्यम से

काव्य-अनुभव बनते हैं। इसी कारण मण्डल जी की विचारधारा रचनात्मक रूप धारण करती है।

मण्डल जी का वैचारिक धरातल मनुष्य की गरिमा पर केन्द्रित है। यह गरिमा श्रम से बनती है, विवेक से सुरक्षित रहती है, आत्मनिर्भरता से सुदृढ़ होती है और सामाजिक न्याय से पूर्णता पाती है। यदि श्रम का मान नहीं रहेगा, तो मनुष्य उपेक्षित रह जाएगा। यदि विवेक नहीं रहेगा, तो समाज पाखंडग्रस्त हो जाएगा। यदि आत्मनिर्भरता नहीं रहेगी, तो जीवन परावलंबी बन जाएगा। यदि सामाजिक न्याय नहीं रहेगा, तो मनुष्य की गरिमा असंभव हो जाएगी। इन चारों तत्त्वों का अन्तःसंबंध उनकी काव्यधारा का नैतिक ढाँचा बनाता है।

उनकी कविता में पाखंड-विरोध इस वैचारिक संरचना का एक आवश्यक पक्ष है। समाज में धर्म, जाति, संस्कार, प्रतिष्ठा, परिवार, विद्या, धन और राजनीति, सबके नाम पर पाखंड संभव है। मण्डल जी पाखंड की बाहरी चमक से प्रभावित नहीं होते। वे व्यवहार के धरातल पर मनुष्य के सत्य को परखते हैं। धर्म यदि करुणा और न्याय नहीं देगा, तो उसका अर्थ अधूरा रह जाएगा। विद्या यदि विवेक नहीं देगी, तो उसका उपयोग संदिग्ध रह जाएगा। धन यदि समाज को बाँटता है, तो उसका गर्व विनाशकारी हो जाता है। परंपरा यदि मनुष्य की गरिमा घटाती है, तो उसका सुधार आवश्यक हो जाता है। इस रूप में मण्डल जी की वैचारिकता व्यवहारधर्मी है।

परिवार का प्रश्न भी उनके वैचारिक झुकाव में उपस्थित है। परिवार केवल निजी संबंधों का क्षेत्र नहीं; वह न्याय, श्रम-विभाजन, स्त्री का मान, वृद्ध और वृद्धा का सम्मान, बेटी और बहू के प्रति दृष्टि, संपत्ति की जिम्मेदारी तथा संस्कार की सामाजिक इकाई है। यदि परिवार में अन्याय है, तो समाज में न्याय का दावा खोखला होता है। मण्डल जी परिवार की ममता मानते हैं, पर परिवार में विद्यमान पूर्वाग्रह, लोभ, सास-बहू तनाव, बेटी पर सामाजिक दबाव, स्त्री के श्रम का अवमूल्यन और पीढ़ीगत संघर्ष भी देखते हैं। इस दृष्टि से उनकी वैचारिकता घर से समाज तक फैली हुई है।

मण्डल जी के विचार में प्रकृति और समाज अलग नहीं हैं। मिट्टी-पानी,

जलस्रोत, नीचला कृषि-धरातल, बाढ़, सूखा, ऋतु और खेती के प्रश्न सामाजिक प्रश्न हैं। यदि पोखर सूखता है, तो केवल जलस्रोत नहीं, पूरा लोकजीवन प्रभावित होता है। यदि निचली धरती की जल-व्यवस्था बिगड़ती है, तो किसान का जीवन संकट में पड़ता है। यदि मिट्टी खाली पड़ती है, तो मनुष्य का परिश्रम, समाज की योजना और प्रकृति का संतुलन, सब प्रश्न के घेरे में आ जाते हैं। इसी कारण मण्डल जी के वैचारिक झुकाव में पर्यावरणीय जीवन-बोध भी स्पष्ट है। पर यह बोध आधुनिक पर्यावरणीय शब्दावली के रूप में नहीं, लोकानुभव, खेती, पानी, मिट्टी और ग्राम्य जीवन के ठोस प्रसंगों के माध्यम से व्यक्त होता है।

मण्डल जी के वैचारिक धरातल में भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, लोकपक्षधर चेतना की वाहक बनती है। लोकभाषा में बोलना मात्र शैली का चुनाव नहीं; यह सामाजिक स्थिति है। जब कवि लोक की भाषा में, लोक के संबोधन में, लोक के प्रश्न की लय में बोलता है, तब वह पाठक को बराबरी के धरातल पर लाता है। शास्त्रीय ऊँचाई से नीचे देखने के बदले वह लोकजीवन के बीच से बात करता है। यह भाषिक लोकतन्त्र उनके वैचारिक झुकाव का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। भाषा स्वयं सामाजिक न्याय का साधन बनती है, क्योंकि वह उपेक्षित लोक-अनुभव को सम्मानित स्वर देती है।

मण्डल जी के वैचारिक झुकाव की एक प्रमुख विशेषता उसका संतुलन है। वे परंपरा को पूर्णतः नहीं नकारते, किंतु उसकी जड़ता को अस्वीकार करते हैं। वे आधुनिकता को आँख मूँदकर स्वीकार नहीं करते, बल्कि विवेकपूर्ण परिवर्तन चाहते हैं। वे समाज के पक्ष में हैं, पर उसकी विभाजनकारी संरचनाओं का विरोध करते हैं। वे धर्म का सांस्कृतिक महत्त्व समझते हैं, पर पाखंड की आलोचना करते हैं। वे गाँव से प्रेम करते हैं, पर उसकी आंतरिक दरारों को भी रेखांकित करते हैं। यही संतुलन उनकी वैचारिक दृष्टि को परिपक्वता प्रदान करता है।

इस वैचारिक संतुलन के कारण उनकी कविता प्रचारात्मक भाषा तक सीमित नहीं रहती। प्रचार सीधे निष्कर्ष देता है, जबकि कविता प्रश्नों और अनुभवों के माध्यम से पाठक को निष्कर्ष तक पहुँचाती है। मण्डल जी श्रम की आवश्यकता को केवल प्रत्यक्ष कथन से नहीं समझाते; वे खेत, चौर, किसान,

पानी, धूप, ठंड, परिवार और अन्न के माध्यम से उसका अनुभव कराते हैं। वे सामाजिक न्याय की बात करते हैं, पर समाज में व्याप्त विभाजनकारी बंधनों, बेटी के प्रश्नों, श्रम के अवमूल्यन और गरीब की स्थिति के माध्यम से इस विचार को जीवन के ठोस धरातल पर उतारते हैं। इसी कारण उनकी कविता में विचार अमूर्त नहीं रहता, बल्कि जीवन ग्रहण कर लेता है।

मण्डल जी का वैचारिक झुकाव अंततः जीवन के पक्ष में है। श्रम जीवन को चलाता है, विवेक जीवन को दिशा देता है, आत्मनिर्भरता जीवन को आधार देती है, सामाजिक न्याय जीवन को गरिमा देता है। इन चारों तत्त्वों के बिना मनुष्य का जीवन अधूरा है। उनकी कविता दुःख देखती है, पर दुःख की पूजा नहीं करती। वह संघर्ष तो देखती है, पर संघर्ष को हिंसक आक्रोश में नहीं बदलती। वह समाज का दोष तो देखती है, पर समाज से पलायन नहीं करती। वह जीवन की कठिनाई तो देखती है, पर मनुष्य के उठने की शक्ति पर भरोसा रखती है।

इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि मण्डल जी का वैचारिक झुकाव श्रम, विवेक, आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय की समेकित दिशा में स्थित है। ये चारों तत्त्व अलग-अलग विचार नहीं, एक ही जीवन-दृष्टि से परस्पर जुड़े आधार हैं। श्रम मनुष्य को धरती से जोड़ता है। विवेक उसे अँधेरे से बचाता है। आत्मनिर्भरता उसकी गरिमा सुरक्षित रखती है। सामाजिक न्याय उसके जीवन को मानवीय बनाता है। इस वैचारिक आधार के बिना मण्डल जी के काव्य-संसार की सामाजिक, भाषिक, प्रतीकात्मक और जीवनधर्मी संरचना पूर्ण रूप से नहीं समझी जा सकती।

6. मण्डल जी का साहित्यिक झुकाव: गद्य से पद्य तक लोक-यथार्थ का प्रवाह: जगदीश प्रसाद मण्डल जी के साहित्यिक झुकाव का परीक्षण करते हुए स्पष्ट होता है कि उनकी रचनात्मकता किसी एक विधा, एक रूप, एक शैली या एक विषय तक सीमित नहीं है। कथा-साहित्य, नाटक, वैचारिक लेखन, संवाद, कविता और गीत सहित अनेक विधाओं में उनकी लेखनी सक्रिय रही है। उनके इस बहुविध लेखन के भीतर एक मूल प्रवाह निरंतर बहता है। वह प्रवाह लोक-यथार्थ का प्रवाह है। गद्य से पद्य तक, विस्तृत कथा-संरचना से संक्षिप्त काव्य-

संकेत तक, मण्डल जी का लेखन बार-बार उसी जीवन-संसार से जुड़ता है। पात्र-केन्द्रित रचना से प्रतीक-केन्द्रित पद्य तक गाँव, किसान, श्रम, समाज, परिवार, मिट्टी-पानी, विवेक, संघर्ष और मनुष्य की गरिमा उनके लेखन के मुख्य आधार बने रहते हैं।

मण्डल जी के साहित्यिक झुकाव की विशेषता यह है कि वे विधा बदलते हैं, पर उनकी जीवन-दृष्टि नहीं बदलती। गद्य में जो विषय विस्तार पाता है, वही पद्य में सघन रूप ग्रहण करता है। कथा में किसान-जीवन पात्रों की परिस्थितियों के माध्यम से सामने आता है, जबकि कविता में वही अन्न, पानी, जेठ, माघ, पसीना और 'अपन बल' जैसे प्रतीकों में प्रकट होता है। उपन्यास में समाज कथानक, संवाद, संघर्ष और पात्रों के पारस्परिक संबंधों के माध्यम से खुलता है; पद्य में वही सामाजिक यथार्थ विभाजनकारी दीवारों, 'मरल घाट', परती मिट्टी, सूखे पोखर, मन-मंथन और रात-दिन के द्वंद्व में सघन हो जाता है। इस अर्थ में मण्डल जी का पद्य उनके गद्य का प्रतिपक्ष नहीं, बल्कि उसका लयात्मक और प्रतीकात्मक विस्तार है।

मण्डल जी के गद्य-संसार का मूल आधार लोकजीवन है। वे समाज को बाहर से देखने वाले लेखक नहीं, समाज के भीतर से बोलने वाले लेखक हैं। उनकी कहानी और उपन्यास में ग्रामीण जीवन की घटना, परिवार का तनाव, किसान का संकट, जमीन का प्रश्न और जाति-संबंध ठोस रूप में उपस्थित होते हैं। स्त्री की भूमिका, लोक-रीति, पाखंड, संघर्ष और न्याय-अन्याय के प्रसंग भी उस गद्य-संसार को गहरा बनाते हैं। इस गद्य-संसार में जीवन अत्यंत विस्तृत छवि में खुलता है। पात्र अपने व्यवहार, भाषा, निर्णय, भ्रम, लोभ, साहस, अभाव और संवेदना द्वारा समाज की अनेक परतें खोलते हैं। वही विस्तृत लोक-यथार्थ काव्यधारा में अधिक संक्षिप्त, लयात्मक और प्रतीकात्मक रूप पाता है।

मण्डल जी के पद्य का जन्म इस गद्य-संसार से कटकर नहीं हुआ है। वे कविता की ओर अचानक ऐसी कवि-जिज्ञासा से नहीं मुड़ते, जिसका जीवन से संबंध कम हो। उनका पद्य दीर्घ जीवनानुभव, गद्यलेखन के अभ्यास, सामाजिक संघर्ष, कृषिजन्य जीवन और लोकभाषा के गहरे संसर्ग से उपजा है। इसलिए पद्य में भावुक सजावट कम, जीवन की परिपक्वता अधिक मिलती है। वे कविता में

भी उन्हीं प्रश्नों को उठाते हैं जो कहानी और उपन्यास में उपस्थित हैं। पर पद्य उन प्रश्नों को ध्वनि, आवृत्ति, बिंब, प्रश्न, संबोधन और प्रतीक के माध्यम से अधिक सघन बना देता है।

गद्य और पद्य के इस अन्तःसंबंध को समझने के लिए मण्डल जी की विषय-दृष्टि पर ध्यान देना आवश्यक है। उनके कथा-संसार में किसान का जीवन घटना, पात्र और संवाद के माध्यम से उभरता है। पद्य में किसान प्रत्यक्ष पात्र के रूप में न रहते हुए भी मिट्टी-पानी, खेत-चौर, धान, बाढ़-सूखा, अगहन-पूस, पसीना और श्रम के रूप में उपस्थित है। कथा में समाज की जो टूटन संवाद और चरित्र के संघर्ष द्वारा प्रकट होती है, पद्य में वही टूटन 'समाजक बान्ह-छेक' (समाज के बंधन-गिरोह) जैसे सूत्र में व्यक्त होती है। गद्य में परिवार के भीतर की खींचातानी विस्तृत कथा का रूप लेती है। पद्य में माँ, बेटी, बहू, सास, बहन और गृहस्थ जीवन से जुड़े संबोधनों के माध्यम से वही खींचातानी भाव-संकेत बन जाती है। इसी कारण दोनों विधाएँ अपना अलग रूप रखते हुए भी एक ही लोक-यथार्थ की दो अभिव्यक्तियाँ हैं।

मण्डल जी के साहित्यिक झुकाव में कथा-तत्त्व पद्य में भी सक्रिय रहता है। उनकी अनेक कविताएँ केवल भावोद्गार नहीं, एक स्थिति से खुलने वाली रचनाएँ हैं। कहीं किसान की परिस्थिति है, कहीं समाज का प्रश्न है, कहीं गाँव की स्मृति है, कहीं परदेश की पीड़ा है। कहीं पोखर का मान है, कहीं परिवार का संवाद है और कहीं मन का मंथन भी है। यही स्थितियाँ उनकी कविता को कथा का सूत्र प्रदान करती हैं। पर पद्य अपनी लय, आवृत्ति और प्रतीक द्वारा उस कथा-सूत्र को भावात्मक गहराई देता है। इस रूप में मण्डल जी का पद्य न केवल शुद्ध गीत है, न गद्य का सरल रूपान्तर। वह गीतात्मक कथन की विशिष्ट शैली बन जाता है।

उनके गद्य में संवाद अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। लोकजीवन संवाद द्वारा चलता है। वह संवाद घर में, ओसारे में, खेत की मेड़ पर, पंचायती में, समाज के विवाद में और परिवार के संबंध में चलता है। मण्डल जी की काव्यधारा में इस संवादधर्मिता का रूपान्तर संबोधन, प्रश्न, उलाहना, उपराग, पुकार और आत्मसंवाद में दिखाई देता है। 'भैया', 'मीत', 'मैया', 'बहिनी', 'अहीं कहू' जैसे संबोधन कविता को लोक-संबंध के धरातल पर लाते हैं। इस दृष्टि से पद्य गद्य

की सामाजिक बातचीत की लय को काव्यात्मक स्वर देता है।

मण्डल जी के साहित्यिक झुकाव का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि वे साहित्य को जीवन से ऊपर खड़ी सजावटी कला के रूप में नहीं देखते। उनके लिए साहित्य जीवन के भीतर से उपजता है और अंततः फिर उसी जीवन को अर्थ, स्वर और दिशा देता है। कथा में जीवन के प्रसंग खुलते हैं। उपन्यास में समाज की व्यापक संरचना सामने आती है। नाटक में जीवन का गतिशील टकराव खुलता है। वैचारिक गद्य में प्रश्न का स्पष्ट रूप सामने आता है। पद्य में उन सबका संक्षिप्त, लयात्मक और प्रतीकात्मक अर्थ ग्रहण होता है। इसी कारण उनके साहित्य की विविध विधाएँ अपने अलग-अलग द्वार होते हुए भी उसी घर में प्रवेश कराती हैं। वह घर लोकजीवन का घर है।

गद्य से पद्य तक प्रवाह की यह निरंतरता भाषा में भी दिखाई देती है। मण्डल जी की भाषा लोकधर्मी है। गद्य में जो भाषा पात्र के मुँह से, समाज के व्यवहार से, ग्रामीण प्रसंग से और संवाद से आती है, पद्य में वही भाषा गीतात्मक और आवृत्तिमय रूप लेती है। लोक-संबोधन, कहावत जैसे वाक्य, ध्वन्यात्मक शब्द, कृषिजन्य पद, परिवार के संबोधन, समाज की टोक और मन का मंथन, ये सब गद्य और पद्य दोनों में भिन्न रूपों में उपस्थित हैं। इस भाषिक निरंतरता से स्पष्ट होता है कि मण्डल जी का साहित्यिक झुकाव लोकभाषा को केवल कथ्य का वाहन नहीं, रचनात्मक ऊर्जा मानता है।

मण्डल जी का प्रतीक-संसार भी उनके गद्य-पद्य संबंध को प्रमाणित करता है। गद्य में जिस तत्त्व को वे ठोस जीवन-तत्त्व के रूप में देखते हैं, पद्य में वही प्रतीक बन जाता है। खेत गद्य में जीविका का स्थल है, पद्य में श्रम और आशा का प्रतीक। पोखर गद्य में गाँव का जल-स्रोत है, पद्य में सामुदायिक जीवन के सूखा या जीवन-रस का संकेत। चौर गद्य में भूगोल है, पद्य में किसान की परीक्षा। मिट्टी गद्य में जन्मभूमि और खेती का आधार है, पद्य में पहचान, श्रम, स्मृति और उर्वरता। इस प्रकार से पद्य गद्य की जीवन-सामग्री को प्रतीकात्मक ऊँचाई देता है।

मण्डल जी का साहित्यिक झुकाव केवल विषय की निरंतरता नहीं, मूल्य

की निरंतरता भी है। गद्य में जो सामाजिक न्याय, श्रम, विवेक, आत्मनिर्भरता और मनुष्य की गरिमा का आग्रह है, पद्य में वही आग्रह अधिक संक्षिप्त और तीव्र रूप में आता है। कथा में अन्याय की घटना पाठक को प्रभावित करती है। पद्य में 'बान्ह-छेक' जैसा प्रतीक उस अन्याय की संरचना को सामने लाता है। उपन्यास में समाज का विस्तृत विघटन दिखाई देता है। पद्य में 'मरल घाट' अथवा 'परती मिट्टी' जैसे बिंब उस विघटन के सघन संकेतक बन जाते हैं। मूल्य एक ही है; अभिव्यक्ति बदल जाती है।

उनका गद्य जीवन की घटना, पात्र और संवाद के माध्यम से मनुष्य को समझता है। पद्य जीवन के भाव, प्रतीक और संकेत के माध्यम से उस अनुभव को सघन बनाता है। इसी कारण पद्य में कथानक कम, अर्थ का घनत्व अधिक है। एक शीर्षक, एक संबोधन, एक ध्वनि, एक आवृत्ति कितने ही गद्यात्मक विस्तार का सार वहन करती है। उदाहरणार्थ, 'फेरो हम' जैसा सूत्र जीवन-जिजीविषा के उस निचोड़ को व्यक्त करता है, जिसके लिए कथा में विस्तृत प्रसंग चाहिए। 'मन मथन' आत्मालोचना और समाजालोचना का एक पूरा संसार खोलता है। 'सुखाएल पोखरिक जाइठ' एक दृश्य से अधिक सामाजिक और अस्तित्वगत बिंब बन उठता है।

मण्डल जी के साहित्यिक झुकाव में लोक-यथार्थ के साथ लोक-नैतिकता भी सक्रिय है। वे समाज के यथार्थ को मात्र दर्ज नहीं करते, बल्कि उसका मूल्यगत परीक्षण भी करते हैं। गद्य में यह परीक्षण पात्रों के व्यवहार के माध्यम से होता है और पद्य में प्रश्न, व्यंग्य, प्रतीक तथा संबोधन के माध्यम से। वे पूछते हैं: समाज कैसे बना है? श्रम का मान है या नहीं? मनुष्य अपने मन को ठगता है या नहीं? गाँव अपना आधार बचा रहा है या नहीं? परंपरा जीवनदायिनी है या रूढ़िगत जकड़न बन गई है? ये प्रश्न गद्य और पद्य दोनों में सक्रिय हैं। इसी कारण उनका साहित्यिक झुकाव केवल यथार्थवादी नहीं, बल्कि नैतिक-यथार्थवादी कहा जा सकता है।

गद्य और पद्य के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण भेद भी ध्यानयोग्य है। गद्य में मण्डल जी जीवन का परिदृश्य विस्तृत करते हैं; पद्य में उसकी अन्तःध्वनि पकड़ते हैं। गद्य में समाज बहुचरित्रीय रूप में आता है; पद्य में समाज सूत्र, प्रतीक और

ध्वनि बनता है। गद्य में घटना समय लेती है; पद्य में समय बिंब बनता है। गद्य में संघर्ष बाहरी परिदृश्य बनता है; पद्य में संघर्ष मन, देह, भाषा और प्रतीक के भीतर उतरता है। इसी भेद के कारण उनका पद्य, गद्य का संक्षेप नहीं, स्वतंत्र काव्यात्मक रूपान्तर है।

मण्डल जी के साहित्यिक झुकाव का प्रवाह इस बात से भी स्पष्ट होता है कि वे साहित्य का माध्यम बदलते हैं, पर उनका पाठक-समाज नहीं बदलता। उनकी रचना का वास्तविक पाठक वही लोकसमाज है, जिससे वे लिखते हैं। वे ऊँचे साहित्यिक मंच के लिए लोकजीवन को सजाते नहीं, बल्कि लोकजीवन से उठती आवाज़ को साहित्यिक गरिमा देते हैं। इसी कारण उनके गद्य और पद्य दोनों में पाठक के साथ आत्मीय संबंध बन जाता है। पद्य में यह संबंध संबोधन और गीतात्मक लय द्वारा अधिक सजीव होता है।

उनकी काव्यधारा में लोकगीत की लय, पंचायती का प्रश्न, कथा-वाचन का प्रवाह, किसान की श्रम-ताल, परिवार का संबोधन और समाज की टोक एक साथ मिलती है। ये सब गद्य-संसार के अनुभव से अलग नहीं हैं। जो लेखक गाँव के संवाद, सामाजिक बहस, गृहस्थ जीवन की खींचातानी और खेत-खलिहान में श्रम की आहट सुन चुका है, वही कविता में ऐसी जीवंत कंठध्वनि ला सकता है। इसी कारण मण्डल जी का पद्य पढ़े जाने से अधिक सुने जाने वाला पद्य प्रतीत होता है। यह श्रव्यता उनके लोकसाहित्यिक झुकाव का महत्त्वपूर्ण परिचायक है।

मण्डल जी के साहित्यिक झुकाव का अंतिम अर्थ यह है कि उनकी रचना की विविधता बिखराव नहीं, विस्तार है। कहानी, उपन्यास, नाटक, वैचारिक लेखन और पद्य अलग-अलग विधाएँ अवश्य हैं, पर उनकी मूल जीवन-दृष्टि एक ही लोकधर्मी केंद्र से संचालित है। गद्य सामाजिक यथार्थ का विस्तार देता है। पद्य उस यथार्थ का मर्म, ध्वनि और प्रतीक देता है। गद्य जीवन की जटिल परिस्थिति को खोलता है। पद्य जीवन में निहित जिद, पीड़ा, प्रश्न और नैतिक बल को सघन करता है।

प्रस्तुत अध्याय का निष्कर्ष यह है कि जगदीश प्रसाद मण्डल जी का साहित्यिक झुकाव गद्य से पद्य तक लोक-यथार्थ के निरंतर प्रवाह के रूप में

समझा जा सकता है। उनका पद्य गद्य से पृथक सौन्दर्य-लोक में पलायन नहीं है। वह गद्य-संसार के लोकजीवन, श्रम, समाज, मिट्टी-पानी, परिवार, विवेक, न्याय और जीवन-जिजीविषा की लयात्मक पुनर्रचना है। इसी कारण मण्डल जी की काव्यधारा को उनकी समग्र रचनाधर्मिता से अलग करके नहीं पढ़ा जा सकता। उनकी कविता उस लोकजीवन की ध्वनि है, जिसकी विस्तृत कथा उनके गद्य में खुलती है। ❑

तृतीय खंड:

काव्य-संसार का विषयगत और संवेदनात्मक झुकाव

7. काव्य-संसार का आरंभिक रूप: जीवनानुभव से उपजी कविता: जगदीश प्रसाद मण्डल जी के काव्य-संसार का आरंभ समझने के लिए यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि **वे युवावस्था** की स्वप्निल भावुकता से उपजी कविता नहीं लिखते। वे जीवन के दीर्घ अनुभव, सामाजिक संघर्ष, कृषिजन्य धरातल, गद्य-साधना, लोकभाषिक संस्कार और मनुष्य के व्यवहार के गहरे निरीक्षण से उपजी कविता लिखते हैं। मण्डल जी पहले जीवन को निकट से जीते हैं। वे समाज को भीतर से देखते हैं, गाँव के अन्तर्विरोधों को अनुभव करते हैं, किसान के श्रम और अभाव को समझते हैं तथा परिवार की ममता और तनाव से परिचित होते हैं। इसके बाद वे पद्य-रचना को सामाजिक दायित्व के रूप में ग्रहण करते हैं और पद्यकार की भूमिका में समाज के बीच खड़े होकर अपने अनुभवों को रचना में ढालते हैं। इसी कारण उनके पद्य-लेखन में भावुक उद्गार के स्थान पर अनुभव की परिपक्वता, जीवन का ताप और सामाजिक यथार्थ की स्पष्ट पहचान अधिक दिखाई देती है।

उनकी काव्यधारा को आरंभिक रूप में पढ़ते समय 'राति-दिन' की 'मनमनियाँ' विशेष महत्त्व रखती है। 'मनमनियाँ' में मण्डल जी का कवि-स्वर अपने-आप से बातचीत करता हुआ प्रतीत होता है। यहाँ कवि बाहर की दुनिया का वर्णन करने से पहले अपनी भीतरी स्थिति को टटोलता है। वह स्वीकार करता है कि पद्य की ओर मुड़ना उसके लिए अचानक अपनाया गया सजावटी काव्याभ्यास नहीं, बल्कि भीतर से उठते अनुभवों को व्यक्त करने का एक नया माध्यम है। इस आत्मस्वीकृति में आत्मसंकोच भी है, सजगता भी, और यह बोध भी कि जीवन की एक दीर्घ यात्रा पार करने के बाद कविता अपना अलग अर्थ ग्रहण करने लगती है। मण्डल जी के लिए कविता युवावस्था की भावुक लय मात्र

नहीं रह जाती; वह अनुभव, संघर्ष, स्मृति और आत्ममंथन की भाषा बन जाती है। इसी कारण 'मनमनियाँ' को उनके कवि-स्वर के आरंभिक संकेत के रूप में पढ़ा जा सकता है। यहाँ कविता क्षणिक भावोच्छ्वास नहीं, बल्कि अनुभव की सघनता से उपजी गहरी अभिव्यक्ति है।

मण्डल जी के पद्य की आरंभिक अवस्था में गद्य की पृष्ठभूमि स्पष्ट रूप से अनुभव होती है। उनकी भाषा कथात्मक स्मृति से भरी है, पर वह शुष्क कथन नहीं बनती, बल्कि गद्य की जीवन-सामग्री को पद्य की लय में रूपान्तरित करती है। कहानी और उपन्यास में जो समाज विस्तृत रूप में खुलता है, पद्य में वही समाज संकेत, प्रतीक, प्रश्न और आवृत्ति के माध्यम से सामने आता है। इसी कारण मण्डल जी आरंभ से ही लोक-यथार्थ से जुड़ी कविता रचते हैं। वे निजी मन की बन्द कोठरी से नहीं, समाज के खुले आँगन से कविता उठाते हैं।

मण्डल जी के आरंभिक काव्य-संग्रहों में जीवन के बहुरंगी स्वर व्यापक रूप से उपस्थित हुए हैं। 'इन्द्रधनुषी अकास' शीर्षक स्वयं इस बहुरंगी स्वभाव का संकेत देता है। इन्द्रधनुष रंगों की विविधता, आकाश का विस्तार, और दोनों के बीच जीवन की आशा तथा प्रश्न का संयुक्त बिंब बनता है। इस पुस्तक में मन, जीवन, मिथिला, मौसम, गाँव, आशा, गरीबी, गोधन, गंगा, मिट्टी, पुरुषार्थ और नयी दुनिया जैसे अनेक संकेत उपस्थित हुए हैं। यह विविधता बिखराव नहीं; यह उस कवि के अनुभव-संसार का फैलाव है, जो जीवन को एक ही रंग में नहीं, अनेक रंगों के संघर्ष और संभावना के रूप में देखता है।

मण्डल जी के आरंभिक पद्य का एक प्रमुख गुण यह है कि वे जीवन के प्रत्यक्ष वस्तु-अनुभवों से अपना काव्य-संसार बनाते हैं। गाँव-खेत का जीवन, पोखर-धान का धरातल, गंगा-गोधन की लोक-स्मृति, अगहन का ऋतु-बोध, धूप-छाँह, रात-दिन, माँ, गरीबी, संघर्ष, रास्ता, बीज, मिट्टी और फूल उनके काव्य के आरंभिक शब्द-संसार का आधार बनते हैं। ये शब्द बाहरी सजावट मात्र नहीं हैं। प्रत्येक शब्द अपने साथ पूरे लोकजीवन की स्मृति, श्रम, आशा और संकट लेकर आता है। इसी कारण उनकी प्रारम्भिक कविताएँ भी जीवन के असली धरातल से गहरे रूप में जुड़ी प्रतीत होती हैं।

'राति-दिन' में समय का द्वंद्व, संघर्ष की लय और जीवन का उतार-चढ़ाव स्पष्ट रूप से उभरता है। रात और दिन, साँझ और भोर, धूप और छाँह, गरीबी और पौरुष, माँ और पत्नी, संघर्ष और डायरी, ये सभी संकेत दिखाते हैं कि कवि जीवन को मात्र भावप्रवाह में नहीं, बल्कि अनुभव के द्वंद्व और समय के दबाव में देखते हैं। इसी कारण उनकी आरंभिक कविता में समय-बोध विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण बन जाता है। दिन घटता है, रात बढ़ती है, भोर आती है, साँझ उतरती है, और समय मनुष्य को निरंतर परखता रहता है। यह समय-बोध बाद की काव्यधारा में मौसम, ऋतु, जीवन-परीक्षा और मृत्यु-बोध के रूप में और अधिक गंभीरता के साथ विकसित होता है।

'तीन जेठ एगारहम माघ' में गीतात्मकता अधिक स्पष्ट हुई है, पर यह गीतात्मकता सहज लोकध्वनि से उपजी है। मण्डल जी यहाँ पेड़ का रंग बदलते, दीन के दिन का प्रश्न उठते, समाज का जाल फैलते, पेट का ताप अनुभव होते और मन की पीड़ा मुखर होते देखते हैं। इस संग्रह में वे ऋतु, देह, श्रम, भूख, समाज और मन के संबंध को गीत के रूप में खोलते हैं। शीर्षक में जेठ और माघ का संयोजन मात्र ऋतु की सूचना नहीं, बल्कि जीवन के ताप और ठंड का अनुभवात्मक तीखापन है। यह आरंभिक गीतधारा आगे चलकर मण्डल जी के समय-बोध का महत्त्वपूर्ण आधार बनती है।

'सुखाएल पोखरिक जाइठ' मण्डल जी के आरंभिक काव्य-संसार में प्रतीकात्मकता को गहरा बनाती है। मण्डल जी सूखे पोखर को केवल सूखा जलाशय नहीं मानते। वे उसे सूखते समाज, घटती सामुदायिकता, पर्यावरणीय संकट, जीवन के क्षय और स्मृति के बचे रहने के बिंब के रूप में देखते हैं। 'फेरो हम' शीर्षक रचना में वे जीवन-जिजीविषा के उस स्वर को सामने लाते हैं, जो उनकी संपूर्ण काव्यधारा में फैला हुआ है। मर-मरकर जीना, टूटकर फिर उठना, पीड़ा के बीच जीवन बचाना, यह भाव आरंभिक काव्यधारा में बहुत स्पष्ट है।

आरंभिक काव्यधारा में मण्डल जी की भाषा विशेष ध्यान माँगती है। यह भाषा शास्त्रीय अलंकरण से नहीं, लोक-संबोधन और अनुभव की ध्वनि से बनी है। 'मीत', 'भैया', 'मैया', 'माए', 'गाम', 'चास', 'पानि', 'माटि', 'धार', 'घट', 'मन', 'जिनगी' जैसे शब्द कविता को लोकजीवन के धरातल पर रोपते हैं। मण्डल जी

के पद्य में भाषा पाठक से दूरी नहीं बनाती; वह उसे अपने निकट खींचती है। वह मानो गाँव के ओसारे, दालान की पंचायती, खेत की मेड़, पोखर के किनारे या घर-आँगन की बातचीत की लय से उपजी हो।

आरंभिक कविताओं में आवृत्ति और ध्वनि-लय का प्रयोग भी उल्लेखनीय है। मण्डल जी शब्द को फिर लाते हैं, पंक्ति को फिर लाते हैं, संबोधन को फिर लाते हैं और प्रश्न को फिर लाते हैं। यह बार-बार आता स्वर साधारण पुनरावृत्ति नहीं। लोकगीत की परंपरा में दोहराया जाता मुखड़ा भाव को गाढ़ा करता है। जीवन में भी दुःख, श्रम, आशा, मौसम, सामाजिक प्रश्न, गरीबी और संघर्ष बार-बार आँखों के सामने आते हैं। मण्डल जी के पद्य की आवृत्तिमयता उसी जीवन-लय का काव्यात्मक रूप है। आरंभिक कविता में इस शिल्प का बीज स्पष्ट दिखाई देता है, जो आगे चलकर उनकी काव्यधारा की मुख्य पहचान बनता है।

मण्डल जी के आरंभिक पद्य में प्रश्नाकुलता निरंतर उपस्थित है। वे केवल देखते नहीं, पूछते हैं। गरीबी कैसे मिटेगी? गाँव का अर्थ क्या है? समाज की चाल कैसे बदलेगी? मन कैसे ठगता है? जीवन कितने संघर्ष से बनता है? इस प्रकार के प्रश्नों के माध्यम से मण्डल जी अपनी कविता को विचारशील बनाते हैं। ये प्रश्न किसी बाहरी सिद्धांत या विचारधारा के प्रत्यक्ष आग्रह से नहीं, बल्कि जीवन के अनुभव, सामाजिक विडम्बना और मनुष्य की भीतरी बेचैनी से उठते हैं। इसी कारण उनकी आरंभिक कविता में विचार प्रचारक घोषणा बनकर नहीं आता, बल्कि आत्ममंथन, अनुभव-चिंतन और जीवन-संघर्ष की स्वाभाविक अभिव्यक्ति बनकर सामने आता है।

इस काव्यधारा के आरंभ में परिवार और स्त्री-संवेदना भी उपस्थित है। माँ, सास-बहू, पत्नी, बेटी, बहन, गृहस्थ जीवन और लोक-संस्कार, ये सभी रचनात्मक संकेत बताते हैं कि मण्डल जी परिवार को निजी भावुकता तक सीमित नहीं मानते। परिवार उनके लिए समाज की पहली संरचना है। यदि परिवार में श्रम, ममता, जिम्मेदारी और न्याय है, तो समाज की नींव मजबूत होती है; यदि परिवार में कलह, लोभ, असम्मान और विघटन है, तो समाज की दरारें गहरी होती जाती हैं। आरंभिक पद्य में इस दृष्टि के बीज उपस्थित हैं।

मिथिला की मिट्टी-पानी के प्रति लगाव आरंभिक पुस्तकों में स्पष्ट रूप से

दिखाई देता है। गंगा, गोधन, मिट्टी का फूल, मौसम, अगहन, धान, जल-धरातल, पानी और जेठ-माघ, ये सभी मण्डल जी के काव्यबोध के मूल तत्त्व हैं। पर यह प्रकृति-वर्णन की पारम्परिक ललित शैली नहीं। यहाँ मण्डल जी प्रकृति को श्रम, अन्न, संकट, आशा और समाज से जोड़कर देखते हैं। खेत सूखा, जलस्रोत सूखा, पानी बढ़ा, निचला भूभाग डूबा, मौसम बदला, इन सबका अर्थ मनुष्य के जीवन पर पड़ता है। आरंभिक कविता में प्रकृति और जीवन अलग-अलग नहीं।

दीर्घ अनुभव से उपजी कविता होने के कारण मण्डल जी के पद्य में तत्काल भावोच्छ्वास के बदले जीवन का निचोड़ अधिक मिलता है। वे प्रेम, प्रकृति, परिवार, समाज, मृत्यु, गरीबी, संघर्ष, श्रम, आत्मबल, पाखंड और विवेक जैसे विषयों पर लिखते हैं, पर प्रत्येक विषय के पीछे जीवन देखे हुए मनुष्य की दृष्टि है। इसी कारण आरंभिक पद्यों में कभी-कभी शिल्पगत अनगढ़ता मिलने पर भी वहाँ अनुभव की प्रामाणिकता रहती है। यह प्रामाणिकता उनकी कविता को अस्थायी प्रयोग नहीं रहने देती; वह धीरे-धीरे काव्यधारा बन उठती है।

मण्डल जी के पद्य के आरंभिक रूप में एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह भी है कि वे आत्माभिव्यक्ति और लोकाभिव्यक्ति के बीच पुल बनाते हैं। मण्डल जी 'हम' कहते हैं, पर उनका यह 'हम' केवल निजी व्यक्तित्व की सीमा में बँधा नहीं रहता। उसके भीतर गाँव का मनुष्य, किसान, संघर्षशील गृहस्थ, श्रमशील समाज, पीड़ित लोक, सोचता हुआ मन और जिजीविषु जीवन का स्वर सुनाई पड़ता है। इसी कारण उनके आरंभिक पद्य में निजी अनुभव सामूहिक अर्थ ग्रहण करता है। उनका 'हम' धीरे-धीरे 'हमारे लोक' के अनुभव में परिणत हो जाता है।

आरंभिक काव्यधारा में नैतिक स्वर भी स्पष्ट है। मण्डल जी केवल जीवन का चित्रण नहीं करते; वे जीवन के मूल्य परखते हैं। श्रम का पक्ष, पाखंड का विरोध, आत्मनिर्भरता, सामाजिक विवेक, मनुष्य की गरिमा, जीवन की जिद, ये सभी आरंभिक स्वर आगे चलकर संपूर्ण काव्यधारा में व्यवस्थित वैचारिक झुकाव बनते हैं। इसी कारण आरंभिक कविता केवल भावभूमि न रहकर आगे के काव्य-विकास की बीजभूमि का रूप लेती है।

इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि मण्डल जी के काव्य-संसार का आरंभ दीर्घ अनुभव से उपजी कविता के रूप में चिह्नित किया जा सकता है। यह कविता

अचानक जन्मा काव्य-प्रयोग नहीं, जीवन की दीर्घ तपस्या, समाज के सतत साक्षात्कार, गद्य-साधना की पृष्ठभूमि, कृषिजन्य जीवन-संस्कार और लोकभाषा के गहरे संसर्ग से निर्मित हुई है। आरंभिक काव्य-संग्रहों में बहुरंगी विषय, लोकधर्मी भाषा, आवृत्तिमय लय, प्रश्नाकुलता, मिट्टी-पानी के बिंब, किसान की संवेदना, परिवार के संकेत, समय-बोध और जीवन-जिजीविषा अलग-अलग रूपों में उपस्थित दिखाई देते हैं। पर आगे चलकर यही तत्त्व मण्डल जी की संपूर्ण काव्य-दृष्टि और काव्य-झुकाव के मूल आधार बनते हैं।

8. रचना का झुकाव: मिथिला की मिट्टी-पानी, भूगोल और प्रकृति की ओर: जगदीश प्रसाद मण्डल जी की काव्यधारा का एक अत्यंत स्पष्ट और आधारभूत झुकाव मिथिला की मिट्टी-पानी, भूगोल और प्रकृति की ओर भी है। परंतु इस झुकाव को केवल प्रकृति-प्रेम अथवा ग्रामीण सौन्दर्य-बोध के रूप में देखना पर्याप्त नहीं। मण्डल जी के काव्य में मिट्टी, पानी, खेत-पथार, ऋतु और जल-धरातल बाहरी दृश्य मात्र नहीं रह जाते; ये सब लोकजीवन की असली संरचना के रूप में उपस्थित होते हैं। उनका प्रकृति-बोध जीवन-सापेक्ष है। वे प्रकृति को मनुष्य से अलग नहीं देखते, बल्कि किसान के श्रम, परिवार की जीविका, गाँव की सामुदायिकता, लोक-संस्कार और सामाजिक संतुलन के साथ जोड़कर देखते हैं।

मिथिला उनके पद्य में मात्र भौगोलिक नाम नहीं। यह मिट्टी-पानी, श्रम-संस्कृति, नदी-चौर, खेत-पोखर, पर्व-त्योहार, लोकभाषा, परिवार की स्मृति और किसान के जीवन का संयुक्त क्षेत्र है। मण्डल जी मिथिला के गौरव का गीत गाते हैं, पर वह गौरव अंध-प्रशंसा नहीं। उनके मिथिला-बोध में ममता है, गर्व है, पीड़ा है, प्रश्न है और सुधार की आकांक्षा है। मिट्टी-पानी से लगाव उन्हें गाँव की दरार, सूखते पोखर, डूबते चौर, परदेशी बनते किसान और टूटते चास-बास के संकट से आँख मोड़ना नहीं सिखाता। उलटे यह लगाव उन्हें उन संकटों को अधिक गहराई से चिह्नित करने की दृष्टि देता है।

मण्डल जी 'मिट्टी' को बहुस्तरीय प्रतीक के रूप में ग्रहण करते हैं। मिट्टी खेत का आधार है, जन्मभूमि की स्मृति है, श्रम का क्षेत्र है, अन्न का गर्भ है, गाँव

की पहचान है और मनुष्य के धरती से संबंध का प्रमाण है। 'माटिक फूल' जैसे संकेत बताते हैं कि सौन्दर्य और जीवन का असली प्रस्फुटन धरती से उठता है। मण्डल जी मिट्टी को केवल पदार्थ नहीं मानते। उनके यहाँ मिट्टी जीवन का मूल धरातल है। जब मिट्टी परती पड़ती है, तब वह केवल कृषि-संकट नहीं रहती। वह मनुष्य की निष्क्रियता, समाज की उपेक्षा और श्रमहीन जीवन के प्रतीक के रूप में भी सामने आती है। 'सतबेध' की 'परता माटि' इस अर्थ में मण्डल जी की काव्य-दृष्टि का गहरा संकेत है।

'पानी' भी उनके काव्य-संसार में जीवन और संकट, दोनों का वाहक है। पानी के बिना खेती नहीं, अन्न नहीं, पशुधन नहीं, गाँव की दिनचर्या नहीं, लोक-संस्कार नहीं। पर पानी अधिक हुआ तो बाढ़, कम हुआ तो सूखा। चौर में अटका पानी किसान के श्रम की परीक्षा बनता है; पोखर में पानी रहे तो सामुदायिक जीवन चलता है, पानी सूख गया तो गाँव का जीवन-रस घटता है। इस दोहरे अनुभव के कारण मण्डल जी पानी को केवल सौन्दर्यपरक वस्तु नहीं मानते। वे पानी की महिमा भी देखते हैं और पानी के असंतुलन से उत्पन्न जीवन-संकट भी देखते हैं। इसी कारण उनका प्रकृति-बोध जीवन के कठोर यथार्थ से जुड़ा है।

पोखर मण्डल जी के पद्य में मिथिला के लोकजीवन का केंद्रीय बिंब है। मण्डल जी गाँव के पोखर को केवल जलाशय नहीं मानते। वे उसे पशु-पक्षी का सहारा, स्त्री के दैनिक श्रम का स्थल, बचपन की स्मृति, स्नान-संस्कार की जगह, सामुदायिक मिलन का केंद्र, जल-संरक्षण का आधार और पर्यावरणीय संतुलन का अंग मानते हैं। 'सुखाएल पोखरिक जाइठ' जैसा शीर्षक इस पूरी जीवन-संरचना को एक बिंब में समेटे हुए है। सूखा पोखर मात्र सूखा पानी नहीं; वह सूखती सामुदायिकता, घटती जीवन-ऊर्जा, टूटते लोक-पर्यावरण और स्मृति के रूप में बचे अवशेष का प्रतीक है। इस बिंब में मण्डल जी का प्रकृति-बोध सामाजिक आलोचना में बदल जाता है।

चौर उनके काव्य-संसार में मिथिला के विशिष्ट भूगोल का प्रतिनिधि है। मण्डल जी चौर को सपाट जमीन का दृश्य भर नहीं मानते। वे उसे धान, पानी, कीचड़, जाड़, प्रतीक्षा, जोखिम, किसान की देहगत साहस और सामूहिक श्रम के क्षेत्र के रूप में देखते हैं। 'रहसा चौरी' का काव्य-धरातल इस चौर-संवेदना को

विशेष रूप से सामने लाता है। चौर में खड़ा किसान मात्र फसल की प्रतीक्षा नहीं करता, बल्कि मौसम, पानी, ऋतु और समय से संघर्ष करता है। चौर अन्न की संभावना भी है और जीवन की परीक्षा भी। मण्डल जी चौर को मात्र भूगोल नहीं, किसान के धैर्य की कसौटी बनाते हैं।

उनकी काव्यधारा में नदी, धार और सरिता भी महत्त्वपूर्ण बिंब हैं। 'सरिता' का पानी, धार और प्रवाह जीवन की गतिशीलता व्यक्त करते हैं। सरिता बहती है, पर बहाव हमेशा सरल नहीं। धार मनुष्य को बहा भी सकती है, बचा भी सकती है। गंगा सांस्कृतिक स्मृति, शुद्धि और लोक-विश्वास का प्रतीक है, पर मण्डल जी उसे केवल धार्मिक पवित्रता के संकीर्ण अर्थ में नहीं रखते। नदी और धार मनुष्य के जीवन से बँधे हैं। खेत, पोखर, गाँव, पर्व, यात्रा, स्नान और सामाजिक स्मृति, सब उनसे जुड़े हैं। इन जल-बिम्बों में प्रवाह, अस्थिरता, शुद्धि, संकट और जीवन की ऊर्जा एक साथ उपस्थित रहती है।

पेड़ और फूल उनके प्रकृति-बोध के कोमल पर अर्थपूर्ण पक्ष हैं। पेड़ की जड़, छाया, रंग-बदलाव, मौसम, फलना, मुरझाने की पीड़ा और पुनर्जन्म का संकेत बनते हैं। 'गाछक रंग बदैल रहल अछि' जैसे संकेत प्रकृति के परिवर्तन तक सीमित नहीं रहते। वे जीवन की परिवर्तनशीलता भी व्यक्त करते हैं। फूल सौन्दर्य अवश्य है, पर मण्डल जी की कविता में फूल धरती से कटकर नहीं खिलता। 'माटिक फूल' इस बात का प्रमाण है कि जीवन की कोमलता और सौन्दर्य की जड़ श्रम, मिट्टी और लोकजीवन में है। मण्डल जी प्रकृति को सजावटी बगिया नहीं मानते। वे उसे जीवन के श्रमसिद्ध प्रस्फुटन के रूप में देखते हैं।

ऋतु-बोध मण्डल जी की प्रकृति-दृष्टि का महत्त्वपूर्ण अंग है। जेठ-माघ, अगहन-पूस, बरखा-धूप, धूप-ठंड, साँझ-भोर और रात-दिन उनके पद्य में समय के मात्र संकेत नहीं। ये सब देह, श्रम, किसान के जीवन और परिवार की आशा से जुड़ी परिस्थितियाँ हैं। जेठ का ताप खेत, शरीर और श्रम की परीक्षा है। माघ की ठिठुरन पानी में उतरते किसान की हड्डी का अनुभव है। अगहन अन्न की आशा है, पर वह श्रम सफल होने के बाद की आशा है। पूस चिंता और प्रतीक्षा का समय बन सकता है। इस ऋतु-बोध में प्रकृति और जीवन अलग नहीं। मौसम मनुष्य की नियति, श्रम, अभाव और जीवन-व्यवस्था को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।

मण्डल जी बाढ़ और सूखा के प्रसंग द्वारा प्रकृति-संवेदना को सामाजिक प्रश्न में बदलते हैं। बाढ़ मात्र नदी का फैलाव नहीं। वह खेत, घर, पशु, अन्न, श्रम, परिवार और गाँव की व्यवस्था पर पड़ी बाढ़ की मार है। सूखा मात्र पानी का अभाव नहीं। वह भूख, ऋण, पलायन, पशुधन, बीज, अन्न, स्त्री के श्रम और किसान के भविष्य का संकट है। इसी कारण उनका प्रकृति-बोध दुखदायी यथार्थ से आँख नहीं मूँदता। वे प्रकृति का सुन्दर रूप देखते हैं, पर उसकी मार और असंतुलन के सामाजिक परिणाम भी देखते हैं।

मिट्टी-पानी, चौर-चाँचर और ऋतु-बोध के साथ मण्डल जी की गाँव-दृष्टि स्वाभाविक रूप से जुड़ी है। गाँव मात्र घरों का समूह नहीं। वह जल-स्रोत, खेत की दिशा, पशुधन, आँगन-बाड़ी, लोक-रीति, पर्व-परिवार, सामूहिक श्रम, भाषा और स्मृति से बना जीवन-क्षेत्र है। 'गीतांजलि' में गाँव से जुड़ी आत्मीयता, मातृभूमि का भाव, बाप-पुरखों की स्मृति और मिट्टी-पानी का आग्रह इस ग्राम्य-बोध को सघन करते हैं। पर यह कहना कि गाँव के प्रति उनका प्रेम गाँव की आलोचना को रोकता है, सही नहीं। यह प्रेम विवेकयुक्त प्रेम है; गाँव का आधार बचाते हुए उसकी विकृति पर प्रश्न करता है।

प्रकृति और समाज का संबंध मण्डल जी के पद्य में निरंतर सक्रिय रहता है। यदि पोखर सूखा, तो समाज की जल-संरचना बिगड़ी; यदि चौर जलजमाव से त्रस्त हुआ, तो किसान का जीवन संकट में पड़ा। यदि खेत परती हुआ, तो श्रम और योजना दोनों प्रश्न में आ गये; यदि लोग गाँव की मिट्टी-पानी से कट गये, तो परदेशी जीवन बढ़ा। यदि ऋतु अनिश्चित हुई, तो परिवार की अन्न-सुरक्षा डगमगायी। इस दृष्टि से मण्डल जी का प्रकृति-बोध आधुनिक पर्यावरणीय चिंता से भी जुड़ता है, यद्यपि वे इसे लोकानुभव की भाषा में व्यक्त करते हैं। वे घोषणात्मक स्वर नहीं अपनाते। वे सूखे पोखर, परती मिट्टी, चौर के पानी, बाढ़ के संदेश और किसान के श्रम द्वारा संकट अनुभव कराते हैं।

उनके पद्य में प्रकृति-बिंब अमूर्त आध्यात्मिकता तक सीमित नहीं हैं। मिट्टी-पानी मनुष्य की देह, श्रम और पेट से जुड़े हैं। धूप देह पर पड़ती है, माघ हड्डी सिहराता है, पानी खेत डुबाता है, चौर में उतरना देह का साहस माँगता है, पोखर स्त्री के दैनंदिन श्रम से जुड़ता है। इसी कारण उनकी प्रकृति देहगत अनुभव की

प्रकृति है। यहाँ कवि फूल देखता है, पर पसीना नहीं भूलता। धान देखता है, पर किसान की देह की थकान भी देखता है। धार देखता है, पर डूबने की आशंका भी देखता ही है। यह प्रकृति-बोध उनके वास्तविक लोकजीवन का बोध है।

मिथिला का भूगोल उनके पद्य में सांस्कृतिक भूगोल बनता है। पानी मात्र जल-विज्ञान नहीं; वह गंगा, पोखर, स्नान, गोधन, चौरचन, खेत, धान और लोक-स्मृति का आधार है। मिट्टी मात्र पदार्थ नहीं; वह जन्म, अन्न, श्रम, स्मृति, भाषा और संस्कार का आधार है। गाँव मात्र निवास-स्थान नहीं; वह जीवन का प्राथमिक समाज है। इस प्रकार भूगोल संस्कृति बनता है, संस्कृति जीवन बनती है, और जीवन कविता बनता है। मण्डल जी इस अन्तःसंबंध को अपने काव्य-झुकाव के भीतर निरंतर सामने लाते हैं।

इस झुकाव का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि मण्डल जी प्रकृति से पलायनवादी शांति नहीं खोजते। वे प्रकृति को जीवन की कठोरता सहित स्वीकार करते हैं। प्रकृति में उजाला, छाया, फूल, गंगा और हरियाली है; पर उसके साथ सूखा-बाढ़, धूप-ठंड, कीचड़, डूबा चौर, सूखा पोखर और परती मिट्टी भी है। मण्डल जी प्रकृति के इस दोहरे रूप को छिपाते नहीं। इसी कारण उनका प्रकृति-वर्णन जीवन-दर्शन बन जाता है। प्रकृति मनुष्य को केवल आनन्द नहीं देती; वह परीक्षा भी लेती है, श्रम का अर्थ भी खोलती है।

मण्डल जी की मिथिला-दृष्टि में स्थानीयता है, पर संकीर्णता नहीं। वे मिथिला के विशिष्ट भूगोल, भाषा, ग्राम्य जीवन, जल-धरातल, ऋतु, पर्व और किसान के जीवन के माध्यम से व्यापक मानवीय अर्थ व्यक्त करते हैं। सूखा पोखर मिथिला का ग्राम्य दृश्य है, पर वह व्यापक मानवीय स्तर पर सूखती सामुदायिकता का संकेत भी हो सकता है। परती मिट्टी स्थानीय कृषि का बिंब है, पर निष्क्रिय समाज का प्रतीक भी है। बाढ़ की मार मिथिला में देखा हुआ यथार्थ है, पर प्रकृति-संकट और सामाजिक असुरक्षा का व्यापक संकेत भी है। इस प्रकार स्थानीय बिंब मानवीय अर्थ प्राप्त करते हैं।

भाषिक स्तर पर भी मिट्टी-पानी का यह झुकाव व्यक्त होता है। मण्डल जी 'माटि', 'पानि', 'धान', 'धार', 'गाछ', 'फूल', 'अगहन', 'जेठ', 'माघ' जैसे शब्दों को लोकध्वनि सहित प्रयोग करते हैं। ये शब्द साहित्यिक शब्दावली के निर्जीव

हिस्से मात्र नहीं, बल्कि इनमें ग्राम्य उच्चारण, किसान का अनुभव, ऋतु की लय, स्त्री का श्रम, परिवार की चिंता और लोक-स्मृति जीवित है। भाषा स्वयं भूगोल की गन्ध रखती है। इसी कारण उनके पद्य में प्रकृति मात्र वर्णित नहीं हुई है। वह भाषा में जीती है।

मण्डल जी के प्रकृति-बोध का आलोचनात्मक पक्ष इस बात में है कि वे मिट्टी-पानी के संकट को मानवीय और सामाजिक संकट से जोड़ते हैं। यदि गाँव का पोखर मिटता है, यदि चौर की जल-व्यवस्था असंतुलित होती है, यदि किसान का खेत परती होता है, यदि लोग चास-बास से कटते हैं, तो समाज की आत्मनिर्भरता कमजोर होती है। इस बिन्दु पर मिट्टी-पानी और आत्मनिर्भरता एक-दूसरे से जुड़ते हैं। प्रकृति-संरक्षण मात्र सौन्दर्य का प्रश्न नहीं, जीवन का प्रश्न है। मण्डल जी यह बात अपनी कविता में बार-बार अनुभूत कराते हैं।

इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि मण्डल जी की रचना का झुकाव मिथिला की मिट्टी-पानी, भूगोल और प्रकृति की ओर अत्यंत गहरा और बहुआयामी है। उनका यह झुकाव प्रकृति-सौन्दर्य का सामान्य आग्रह नहीं। यहाँ मिट्टी जीवन का आधार है; पानी जीवन और संकट, दोनों का वाहक; पोखर सामुदायिक स्मृति का केंद्र; चौर किसान की परीक्षा; खेत श्रम का स्थान; ऋतु जीवन की कसौटी; गाँव सांस्कृतिक भूगोल; और प्रकृति सामाजिक संतुलन का आधार। मण्डल जी मिथिला की धरती को खाली सजावटी पृष्ठभूमि के रूप में नहीं, जीवन के सक्रिय पात्र के रूप में स्थापित करते हैं। इसी कारण उनका मिट्टी-पानी का बोध मैथिली काव्यधारा में विशिष्ट लोक-यथार्थवादी और जीवनधर्मी अर्थ ग्रहण करता है।

9. रचना का झुकाव: किसान, मजदूर और श्रमशील मनुष्य की ओर: जगदीश प्रसाद मण्डल जी की काव्यधारा का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण झुकाव किसान, मजदूर और श्रमशील मनुष्य की ओर भी है। मण्डल जी किसान को केवल ग्रामीण जीवन का परिचित पात्र नहीं मानते। वे उसे समाज के जीवन की धुरी के रूप में भी देखते हैं। उसी प्रकार मजदूर उनके यहाँ मात्र अभावग्रस्त व्यक्ति नहीं; वह श्रम की नैतिक गरिमा को धारण करने वाला मनुष्य भी है। उनकी दृष्टि

में श्रमशील जीवन समाज के अस्तित्व, उत्पादन और नैतिक संतुलन को संभालकर रखने वाली मूल शक्ति है। इसी कारण उनके पद्य को पढ़ते समय स्पष्ट होता है कि मण्डल जी किसान के जीवन को दया, भावुकता या ग्रामीण सजावट में सीमित नहीं करते। वे उसके, अर्थात् उस जीवन के श्रम, संघर्ष, धैर्य, आत्मसम्मान और सामाजिक महत्त्व को काव्य का केंद्र बनाते हैं।

मिथिला के ग्रामीण समाज में किसान का जीवन मिट्टी-पानी, ऋतु, श्रम और उत्पादन के जटिल संबंध से बनता है। खेत की उर्वरता, पानी की अनुपलब्धता, बीज का भरोसा, पशुधन, परिवार का श्रम, ऋण का बोझ और बाजार का असंतुलन मिलकर उसके जीवन की दिशा तय करते हैं। मण्डल जी इस संपूर्ण संरचना को भीतर से देखते हैं। उनके पद्य में किसान अलगाव के रूप में नहीं आता; उसके साथ खेत आता है, पानी आता है, चौर आता है, मौसम आता है, परिवार आता है, अन्न का प्रश्न आता है। इस व्यापक संबंध-व्यवस्था के कारण मण्डल जी किसान को मात्र व्यक्ति नहीं मानते। वे उसे पूरे लोकजीवन के प्रतिनिधि के रूप में देखते हैं।

'रहसा चौरी' मण्डल जी के किसान-मजदूर के प्रति झुकाव का विशेष आधार-ग्रन्थ है। इस पुस्तक में चाँपी जमीन, बाढ़, धान, धनकटनी, थाल-कीचड़, जाड़-गरमी, किसान की देह, धैर्य और जीविका का संघर्ष एक साथ उपस्थित हुआ है। 'चौरीक धनकटनी' शीर्षक रचना किसान के श्रम को मात्र कृषि-कर्म के विवरण भर में नहीं रखती, वह उसे जीवन की परीक्षा में भी परिलक्षित करती है। चौर में उतरने वाला किसान ठिठुरते पानी, देह की पीड़ा और श्रम की कठिनाई के बीच भी धान छोड़ नहीं सकता, क्योंकि वह धान मात्र फसल नहीं। वह परिवार का पेट, वर्षभर की आशा और श्रम का फल है। इस स्थिति में किसान का धैर्य काव्य का नैतिक केंद्र बनता है।

किसान के जीवन में श्रम और जोखिम एक-दूसरे से अलग नहीं। किसान खेत में उतरता है, पर उपज केवल उसके श्रम पर निर्भर नहीं; ऋतु, पानी, कीट, बाजार, ऋण, सामुदायिक व्यवस्था और शासन-व्यवस्था सब उसका भाग्य निर्मित करते हैं। मण्डल जी इस असुरक्षा को समझते हैं। किसान का श्रम निश्चित है, पर फल अनिश्चित। वह बीज देता है, पर आकाश की चाल उसके हाथ में नहीं।

वह खेत जोतता है, पर बाढ़ की मार या सूखा की चिंता उसे असहाय बना सकती है। इस विडम्बना को मण्डल जी अत्यंत गहराई से पकड़ते हैं।

मण्डल जी किसान को करुणा-पात्र होते हुए भी केवल करुणा तक सीमित नहीं रखते। उनकी दृष्टि में किसान परिश्रमी है, उसमें जिजीविषा है, वह सोचने वाला है, सहनशील है, समाज का आधार है। उसका दुःख देखना आवश्यक है, और उसके श्रम का गौरव देखना भी आवश्यक है। कवि किसान को हाथ पसारे असहाय रूप में नहीं देखते। किसान को वे धरती से जूझते, मौसम से भिड़ते, परिवार संभालते और अन्न उपजाते मनुष्य के रूप में देखते हैं। इस दृष्टि से मण्डल जी का किसान-केन्द्रित काव्य दयावादी नहीं रहता; वह सम्मानवादी रूप ग्रहण करता है।

'सतबेध' में 'अपन बल' शीर्षक रचना आत्मनिर्भर श्रम के महत्त्व को सामने लाती है। किसान के जीवन का मूल बल बाहरी प्रतिष्ठा नहीं; उसका मूल बल अपना श्रम और अपना भरोसा है। जो मनुष्य अपने हाथ, अपनी मिट्टी, अपने विवेक और अपने धैर्य के बल पर खड़ा है, वह विपरीत परिस्थितियों में भी सुरक्षित है। इस अर्थ में किसान आत्मनिर्भर जीवन का प्रतीक बनता है। मण्डल जी का वैचारिक झुकाव किसान के माध्यम से स्पष्ट होता है: श्रम के बिना मानवीय गरिमा अधूरी है, और उसी प्रकार आत्मनिर्भरता के बिना समाज का आधार डगमगाता है।

'चुनौती' में किसान और चास-बास का प्रश्न जीवन-संघर्ष का व्यापक रूप ग्रहण करता है। 'बीघा भरि चास-बास' मात्र जमीन का माप नहीं; वह गृहस्थ जीवन का आधार, श्रम की आशा और आत्मनिर्भर अस्तित्व का संकेत भी है। चास-बास टूटने का मतलब केवल खेत का उत्पादन घट जाना नहीं। इसका अर्थ है परिवार का आधार डोलना, परदेश की विवशता बढ़ना, गाँव की श्रम-संस्कृति का कमजोर पड़ना और मनुष्य के आत्मसम्मान पर चोट पड़ना। मण्डल जी इस संकट को समझते हैं और अपनी कविता के माध्यम से चास-बास का नैतिक महत्त्व स्थापित करते हैं।

मजदूर का प्रश्न भी इसी किसान-बोध से जुड़ा है। मिथिला के ग्रामीण समाज में किसान और मजदूर की जीवन-स्थिति प्रायः एक-दूसरे से सट जाती

है। छोटा किसान अपने खेत में किसान, दूसरे के खेत में मजदूर, घर में गृहस्थ, समाज में दायित्वनिष्ठ व्यक्ति और संकट में ऋणी बन जाता है। इस जटिल जीवन-स्थिति के कारण मण्डल जी श्रमशील मनुष्य को वर्गीकृत शब्द में बन्द नहीं करते। वे श्रम के देहगत सत्य को पकड़ते हैं। पसीना, थकान, धूप-छाँह, थाल-कीचड़, भूख-प्यास, प्रतीक्षा, निराशा और फिर उठने की जिद, इस सत्य के भीतर समाहित है।

मण्डल जी श्रम को मात्र उत्पादन का साधन नहीं मानते। उनकी दृष्टि में श्रम मनुष्य की नैतिक पहचान है। जो श्रम करता है, वह संसार को चलाता है। खेत जोतने वाले, धान रोपने वाले, धनकटनी करने वाले, पानी में उतरने वाले और पशु संभालने वाले लोग सभ्यता के अदृश्य आधार हैं। घर के काम से परिवार की दिनचर्या बनाने वाले और समाज के लोककार्य में जुटे श्रमशील मनुष्य भी उसी आधार को संभालते हैं। साहित्य प्रायः प्रतिष्ठित वर्ग की अनुभूति को केंद्र बनाता रहा है; मण्डल जी इस परंपरा के विरुद्ध श्रमशील मनुष्य को काव्य के केंद्र में लाते हैं।

'हर हलक' जैसे संकेत श्रम का संगीत खोलते हैं। हल की ध्वनि, बैल की चाल, खेत की रेखा, किसान की देह का झुकाव, ऋतु की प्रतीक्षा, ये सब मिलकर कृषिजन्य जीवन की लय बनाते हैं। मण्डल जी इस लय को बाहरी दृश्य के रूप में नहीं, जीवन की आंतरिक ताल के रूप में ग्रहण करते हैं। हल चलाने की क्रिया धरती और मनुष्य के संबंध का मूर्त रूप है। किसान धरती को फाड़ता नहीं, उसके गर्भ को जगाता है। और इसलिए इस श्रम में हिंसा नहीं, उत्पादन की करुणा और धैर्य है।

किसान और श्रमशील जीवन को समझने के लिए 'कामधेनु' का प्रतीक महत्त्वपूर्ण है। कामधेनु लोकविश्वास में समृद्धि और पोषण का प्रतीक है, पर मण्डल जी उसे चमत्कारी इच्छापूर्ति तक सीमित नहीं रखते। वे कामधेनु को पशुधन, गृहस्थ श्रम और जीवन-निर्वाह के लोक-अर्थ से जोड़कर देखते हैं। उनकी दृष्टि में गाय, खेत, दूध, गोबर, परिवार और चास-बास अलग-अलग वस्तुएँ नहीं, बल्कि ग्रामीण जीवन के आत्मनिर्भर चक्र के परस्पर जुड़े अंग हैं। इस चक्र का मूल्य समझे बिना ग्रामीण समाज की आत्मनिर्भरता को समझना

कठिन है। मण्डल जी की 'कामधेनु' इस लोक-आर्थिक और नैतिक संरचना को काव्यरूप देती है।

श्रमशील स्त्री की उपस्थिति किसान-मजदूर के जीवन का स्वाभाविक और अनिवार्य हिस्सा है। ग्रामीण जीवन में स्त्री मात्र घर-परिवार का भावनात्मक केंद्र नहीं; वह श्रम की साझीदार भी है। धान सुखाना, अन्न संभालना, पशुधन की देख-रेख, पानी का काम, भोजन, बच्चा और संस्कार उसके श्रम-संसार के अंग हैं। ऋतु-अनुकूल गृहस्थी व्यवस्था भी उसी श्रम-संसार से जुड़ी है। मण्डल जी की काव्यधारा में माँ, बेटी, बहन, बहू और गृहस्थ स्त्री सब श्रम और संबंध की दोहरी जिम्मेदारी संभालती दिखाई पड़ती हैं। यहाँ किसान का संसार केवल खेत और उत्पादन तक सीमित नहीं रहता, बल्कि परिवार, स्त्री-संवेदना और गृहस्थ श्रम की व्यापक संरचना से जुड़ जाता है।

किसान के जीवन में भूख और अन्न का प्रश्न अत्यंत गहरा है। अन्न उपजाने वाला हाथ स्वयं अभाव झेलता है, यह सामाजिक विडम्बना मण्डल जी की काव्य-दृष्टि से छिपी नहीं है। मण्डल जी सदैव ज्वलन्त और आवश्यक कल्याणकारी कथानक को पकड़ते हैं। यह गुण उन्हें उन रचनाकारों से अलग करता है जो भूत और भविष्य की चिंता तो करते हैं, पर वर्तमान को छोड़ देते हैं। किसान खेत जोतता है, पर उसके घर में अन्न की सुरक्षा हमेशा निश्चित नहीं। मजदूर श्रम करता है, पर श्रम का मूल्य बहुत कम। इस असंतुलन में सामाजिक न्याय का प्रश्न उठता है। मण्डल जी अन्न को मात्र खाद्य पदार्थ नहीं मानते। वे उसे श्रम, न्याय, जीवन, परिवार और समाज के संतुलन से जोड़ते हैं।

परदेश का प्रसंग किसान और श्रमशील मनुष्य के आर्थिक, सामाजिक और पारिवारिक संकट से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है। जब गाँव में श्रम का सम्मान घटता है, चास-बास अस्थिर होता है, जमीन छोटी या अनुपयोगी होती है, पानी का संकट बढ़ता है, तब श्रमशील मनुष्य परदेश की ओर पलायन करता है। 'सरिता', 'गीतांजलि', 'चुनौती' और अन्य काव्य-संसार में परदेशी जीवन के संकेत इसी ग्रामीण संकट के परिणाम के रूप में पढ़े जा सकते हैं। परदेश मात्र दूरी नहीं। वह मिट्टी-पानी से कटने का दुःख, परिवार का विखंडन और आत्मनिर्भर ग्रामजीवन के क्षरण का संकेत है।

मण्डल जी के किसानी काव्य की एक विशेषता यह है कि वे श्रम का सौन्दर्य तो देखते हैं, परन्तु श्रम की कठिनाई नहीं छिपाते। किसान के हाथ में गरिमा है, पर उस हाथ पर श्रम की कठोर रेखा भी अंकित है। खेत आशा देता है, पर खेती में अनिश्चितता भी है। अन्न जीवन देता है, पर ऋण और बाजार का दबाव किसान को तोड़ता भी है। चौर उपजाऊ है, पर पानी में उतरने का जोखिम भी है। पोखर जीवनदायी है, पर सूखे पोखर का संकट-बिंब भी है। इस दोहरी दृष्टि के कारण मण्डल जी का किसानी चित्रण न तो केवल श्रम-सौन्दर्य का उत्सव बनता है और न करुणा का एकरेखीय चित्र; बल्कि वह जीवन के यथार्थ धरातल पर आधारित रहता हुआ अधिक विश्वसनीय बन उठता है।

इस काव्यधारा में श्रमशील मनुष्य का आत्मसम्मान महत्त्वपूर्ण है। श्रम करने वाला मनुष्य समाज की दया नहीं, न्याय चाहता है। उसे अवसर, मान, श्रम का उचित मूल्य, सामाजिक सम्मान और निर्णय में भागीदारी चाहिए। मण्डल जी इस आत्मसम्मान के पक्ष में सदैव खड़े दिखाई देते हैं। वे श्रमिक जीवन के अभाव को चिह्नित करते हैं, पर अपमानित दृष्टि से नहीं। साधारण जन उनके यहाँ साहित्य का 'विषय' नहीं; वह साहित्य का नैतिक आधार है। इसी कारण उनकी कविता में श्रमशील मनुष्य की आवाज़ आत्मीय और सम्मानपूर्ण स्वर में सुनाई पड़ती है।

किसान और मजदूर का जीवन मण्डल जी के पद्य में समाज की आलोचना करने का साधन भी बनता है। जो समाज अन्न उपजाने वाले हाथ का मान नहीं करता, वह समाज अपना आधार भूलता है। जो समाज श्रम की उपेक्षा करता है, वह पाखंड की चमक में फँसता है। जो समाज किसान के संकट को निजी दुर्भाग्य मानता है, वह सामूहिक उत्तरदायित्व से अपना मुँह मोड़ रहा होता है। मण्डल जी ऐसे समाज से प्रश्न करते हैं। वे पूछते हैं, सभ्यता किन हाथों पर टिकी है? अन्न का असली मूल्य कौन समझता है? खेत की पीड़ा, पानी का असंतुलन, किसान का धैर्य, मजदूर की देह, इन सबके सम्मान के बिना समाज कहाँ जाएगा?

मण्डल जी किसान के प्रतिरोध को सहनशील अडिगता के रूप में भी देखते हैं। उनके काव्य में घोषणात्मक विद्रोह का स्वर कम है, पर टूटकर भी खेती

छोड़ देने की मनोवृत्ति स्वीकार्य नहीं बनती। चौर में उतरना, ठंड सहना, कीचड़ से जूझना, धान बचाना, परिवार संभालना, फिर भी बीज रखना और फिर खेत जोतना, ये सब किसान के प्रतिरोध के जीवनधर्मी रूप हैं। इस अर्थ में किसान का श्रम स्वयं प्रतिरोध बन जाता है। किसान मृत्यु-बोध के बीच जिजीविषा, अभाव के बीच आशा और असंतुलन के बीच उत्पादन की प्रक्रिया जारी रखता है।

उनकी किसान-दृष्टि लोक-आर्थिक संरचना से भी जुड़ी है। पशुधन, बीज, जल, श्रम और जमीन किसान के जीवन के मूल घटक हैं। परिवार, ऋतु, बाजार और समाज भी उसकी जीवन-संरचना को प्रभावित करते हैं। इन घटकों में जब असंतुलन आता है, तब किसान का जीवन संकटग्रस्त हो जाता है। मण्डल जी इस संपूर्णता को प्रत्यक्ष या प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त करते हैं। इसी कारण उनकी पद्य-रचना में किसान का प्रश्न मात्र भावात्मक नहीं, संरचनात्मक भी है। वे कृषि-संस्कृति की टूटन और सामाजिक असंतुलन के संबंध को दिखाते हैं।

श्रमशील मनुष्य की काव्य-प्रतिष्ठा मण्डल जी के मैथिली काव्य-योगदान का प्रमुख पक्ष है। वे आम जीवन के उन वर्गों को कविता में प्रतिष्ठित करते हैं, जिनका जीवन प्रायः इतिहास और साहित्य के ऊँचे पृष्ठों से बाहर छूट जाता है। किसान, मजदूर, गरीब गृहस्थ, स्त्री, परदेशी, श्रम से थकी देह वाला मनुष्य, ये सब उनके पद्य में आवाज़ पाते हैं। इस अर्थ में मण्डल जी की कविता लोक-यथार्थ की साहित्यिक पुनर्स्थापना है।

इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि मण्डल जी की रचना का झुकाव किसान, मजदूर और श्रमशील मनुष्य की ओर गहरा और मूल्यनिष्ठ है। किसान उनके पद्य में केवल अन्नदाता कहकर महिमामण्डित पात्र नहीं। वह संघर्षशील, श्रमशील, विवेकशील, आत्मसम्मानयुक्त और संकटग्रस्त मनुष्य है। मजदूर समाज के हाशिये पर पड़ी देह नहीं। वह समाज की असली गतिशक्ति है। श्रम जीवन का बोझ नहीं; मनुष्य की गरिमा और आत्मनिर्भरता का आधार है। इस झुकाव के कारण मण्डल जी आम-अवाम के उस श्रम-सत्य को काव्य के केंद्र में लाते हैं, जिसके बिना मिथिला, समाज और मनुष्य का कोई अर्थ पूर्ण नहीं हो सकता।

10. रचना का झुकाव: समाज की दरार, असंतुलन और प्रतिरोध की ओर: जगदीश प्रसाद मण्डल जी की काव्यधारा में समाज मात्र सामूहिक जीवन की शांत पृष्ठभूमि नहीं है। उनकी दृष्टि में समाज एक सक्रिय जीवन-क्षेत्र है, जहाँ मनुष्य का व्यवहार, संबंध, श्रम, लोभ, प्रेम, न्याय, अन्याय, संस्कार, रूढ़ि और विवेक निरंतर परखे जाते हैं। मण्डल जी गाँव और समाज से प्रेम तो करते हैं, पर उसका अंध स्वीकार नहीं करते। वे समाज में विद्यमान दरार देखते हैं, असंतुलन चिह्नित करते हैं और प्रतिरोध का लोकधर्मी स्वर उठाते हैं। इस प्रतिरोध में क्रोध है, पीड़ा है, प्रश्न है, पर समाज से घृणा नहीं है। मण्डल जी समाज को नकारते नहीं। वे समाज को उसके विकृत रूप से मुक्त करने का प्रयत्न करते हैं।

समाज की दरार मण्डल जी की काव्यधारा में अनेक रूपों में उपस्थित होती है। कहीं यह जाति-भेद के रूप में दिखाई पड़ती है, कहीं वर्गीय दूरी के रूप में, और कहीं धन तथा मान के अहंकार के रूप में भी सामने आती है। उसी प्रकार कहीं परिवार के विघटन, स्त्री के अवमान, श्रम के अवमूल्यन और लोक-संस्कार के कठोर रूढ़ि में बदल जाने के रूप में भी यह परिलक्षित होती है। मण्डल जी इन सबको अलग-अलग घटना मानकर नहीं छोड़ते। उनकी दृष्टि में ये सब समाज के भीतर बढ़ती विवेकहीनता के लक्षण हैं। समाज जब मनुष्य की गरिमा और न्याय-बोध को भूलकर बाहरी प्रतिष्ठा, जातीय दम्भ, धनबल, पाखंड और रूढ़ि-प्रधान सोच पर चलने लगता है, तब उसके भीतर दरार पड़ने लगती है।

'अकास गंगा' में प्रयुक्त 'समाजक बान्ह-छेक' सामाजिक आलोचना का अत्यंत महत्त्वपूर्ण बिंब है। यहाँ 'बान्ह' से बाँधने वाली सामाजिक संरचना और 'छेक' से मनुष्य की राह रोकने वाले अवरोध का बोध होता है। यह पद केवल बाहरी नियमों और बंदिशों का संकेत नहीं, बल्कि मनुष्य के मन में बनी दीवारों का भी प्रतीक है। जातिगत और धार्मिक भेद, उम्र तथा प्रतिष्ठा पर आधारित ऊँच-नीच, अर्थदण्ड, लोक-भय और विवेकहीन परंपराएँ मिलकर मनुष्य के सहज जीवन-प्रवाह को बाधित करती हैं। मण्डल जी इन सामाजिक अवरोधों को स्पष्ट रूप से चिह्नित करते हुए प्रश्न उठाते हैं कि समाज यदि मनुष्य को मुक्त करने के स्थान पर बाँधता है, तो उसका औचित्य क्या रह जाता है?

'सतबेध' की 'जीवन धार' सामाजिक संबंध का गहरा प्रश्न उठाती है। समाज और व्यक्ति एक-दूसरे से अलग-थलग पड़े अस्तित्व नहीं। व्यक्ति समाज के भीतर बनता है और समाज व्यक्ति के व्यवहार, विवेक और संबंध से आकार पाता है। यदि समाज दूषित है, तो व्यक्ति पूर्ण रूप से बच नहीं सकता; यदि व्यक्ति विवेकहीन है, तो समाज स्वस्थ नहीं रह सकता। इस पारस्परिक संबंध का बोध मण्डल जी की सामाजिक कविता को गहरा बनाता है। वे केवल समाज पर आरोप नहीं लगाते। वे व्यक्ति और समाज दोनों को आत्ममंथन के धरातल पर लाते हैं। दरार बाहर भी है और भीतर भी; इसी कारण सामाजिक सुधार में बाहरी व्यवस्था और भीतरी विवेक, दोनों को एक साथ परखने की आवश्यकता रहती है।

'मन मथन' की 'संग जिनगी खेल होइत एलैए' जैसी रचना समाज के ऐतिहासिक खेल को खोलती है। जिनगी के साथ खेल कभी जाति के नाम पर हुआ, कभी धर्म के नाम पर, कभी सुधार के नाम पर, कभी प्रतिष्ठा के नाम पर, कभी राजनीति और धन के नाम पर। मण्डल जी इसमें समाज की उस चाल को देखते हैं, जिसमें मनुष्य का असली दुःख दब जाता है और बाहरी पहचानें प्रमुख बन जाती हैं। इस रचनात्मक दृष्टि से समाज की आलोचना अधिक व्यापक होती है, क्योंकि समस्या मात्र एक घटना न रहकर सोच की संरचना बन जाती है।

'नजैर कहाँ बदलल' सामाजिक परिवर्तन के सतहीपन पर प्रश्न करती है। बाहरी दुनिया बदलती है, रहन-सहन बदलता है, शिक्षा और साधन बढ़ते हैं, पर यदि मनुष्य की नज़र नहीं बदली, तो समाज की मूल बीमारी जैसी-की-तैसी रहती है। मण्डल जी इस नज़र के प्रश्न को बहुत गंभीरता से उठाते हैं। असली परिवर्तन वस्त्र, भवन, सड़क, विद्यालय, साधन या भाषण से नहीं होता। असली परिवर्तन दृष्टि के बदलने में है। यदि मनुष्य दूसरे मनुष्य को बराबरी, सम्मान और करुणा से देखने की दृष्टि विकसित नहीं कर पाता, तो आधुनिकता भी पाखंड बन जाती है। इसी लिए मण्डल जी के काव्य में परिवर्तन की असली कसौटी बाहरी विकास नहीं, बल्कि मनुष्य की नज़र और व्यवहार का बदलाव है।

समाज के असंतुलन का एक प्रमुख आधार आर्थिक विषमता है। किसान और मजदूर श्रम करते हैं, पर सम्मान और सुविधा से वंचित रहते हैं। जो वर्ग श्रम

से दूर है, वह प्रतिष्ठित बना रहता है। यह उलटी व्यवस्था मण्डल जी को बेचैन करती है। 'चुनौती' के अनेक संकेत जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझते मनुष्य का संघर्ष खोलते हैं। 'मरल घाट' जैसा बिंब समाज की मृत संवेदना को सामने लाता है। घाट वह स्थान है, जहाँ जीवन और मृत्यु के बीच समाज एकत्र होता है; पर यदि घाट मर गया, तो अर्थ यह कि सामुदायिक संवेदना, स्मृति और नैतिकता भी शिथिल हो रही है।

'चुनौती' की 'मानव गुण' सामाजिक आलोचना का सकारात्मक पक्ष सामने लाती है। मण्डल जी केवल दोष नहीं देखते। वे मनुष्य के गुण की खोज भी करते हैं। उनका प्रतिरोध केवल नकार या अस्वीकार का भाव नहीं है; वह समाज में करुणा, विवेक, श्रम का मान और सत्य का साहस जैसे मानवीय मूल्यों को फिर से प्रतिष्ठित करने का प्रयास है। समाज की दरार देखना आवश्यक है, पर वह दरार केवल टूटन का आख्यान बनकर न रह जाए। कवि पूछते हैं, मनुष्य के भीतर करुणा कहाँ है, विवेक कहाँ है, श्रम का मान कहाँ है और सत्य का साहस कहाँ है? इन प्रश्नों से मण्डल जी समाज की आलोचना करते-करते मनुष्य की संभावना को भी जगाते हैं।

परिवार समाज की सबसे छोटी और आधारभूत इकाई है। मण्डल जी की काव्यधारा में परिवार के भीतर का तनाव व्यापक सामाजिक दरारों के सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्त होता है। सास-बहू, बेटी, बहन, माँ, पत्नी, वृद्ध, बालक, गृहस्थ, ये सब पात्र मात्र पारिवारिक भावुकता के लिए नहीं। इनके माध्यम से समाज का न्याय-अन्याय, स्त्री का मान-अपमान, श्रम का वितरण, संबंध का विश्वास और लोक-संस्कार की असली परीक्षा सामने आती है। यदि घर के भीतर न्याय नहीं, तो समाज के बाहर का न्याय अधूरा। मण्डल जी इस सूक्ष्म संबंध को अपनी सामाजिक दृष्टि से चिह्नित करते हैं।

स्त्री का प्रश्न समाज के असंतुलन का प्रमुख संकेत है। बेटी को बोझ समझने की दृष्टि, बहू पर अनुचित अपेक्षा, माँ के श्रम की अदृश्यता, स्त्री की असुरक्षा, पत्नी को केवल गृहस्थी के दायित्व में बाँध देना, ये सब समाज की असंतुलित संरचना के अलग-अलग रूप हैं। मण्डल जी स्त्री को केवल दया और करुणा का केंद्र नहीं बनाते। वे उसके श्रम, सहनशीलता, संबंध-निर्माण की

शक्ति और जीवनधारक भूमिका को सामने लाते हैं। इसी कारण स्त्री-संवेदना स्वयं समाज-संशोधन का आधार बनती है।

जाति और समुदाय संबंधी दरार मण्डल जी के सामाजिक प्रतिरोध का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। मिथिला के गाँव की सामाजिक बनावट में जातीय संरचना का प्रभाव गहरे रूप में दिखाई पड़ता है। पर मण्डल जी जाति को लोक-व्यवस्था का अपरिवर्तनीय सत्य मानकर स्वीकार नहीं करते। वे देखते हैं कि जाति जब मनुष्य के मूल्यांकन का आधार बनती है, तब समाज की जीवन-धारा अटकने लगती है। जब श्रम का मान जाति के आगे गौण, मनुष्य की गरिमा जन्म के आगे गौण और संबंध की आत्मीयता रूढ़ सोच के आगे कमजोर होती जाती है, तब समाज की आत्मा दरकने लगती है। मण्डल जी इस दरार के विरुद्ध मानवीयता, श्रम और विवेक के पक्ष में खड़े हैं।

धर्म और संस्कार के नाम पर पाखंड भी उनके प्रतिरोध का लक्ष्य है। मण्डल जी लोक-संस्कार का मूल्य समझते हैं, पर अंधविश्वास और पाखंड के पक्षधर नहीं हैं। धर्म यदि करुणा, संयम, सेवा और नैतिकता देता है, तो उसका सामाजिक महत्त्व है। पर जब धर्म के नाम पर ऊँच-नीच, दिखावा, व्यर्थ खर्च, भय, छल और अन्याय फैलता है, तब मण्डल जी उसे चुनौती देते हैं। इस रूप में उनका प्रतिरोध परंपरा-विरोधी नहीं। वह पाखंड-विरोधी प्रतीत होता है। वे संस्कार को बचाते हुए रूढ़ि को तोड़ने के पक्ष में हैं।

मण्डल जी की काव्यधारा में प्रतिरोध का स्वर लोकभाषा से बना है। वे कठिन विचार का बोझ पाठक पर नहीं रखते। वे लोक के शब्द, प्रश्न, संबोधन और स्थिति से बात करते हैं। 'अहीं कहू', 'भैया', 'मीत', 'केकरा कहब', 'किएक', 'केना' जैसे संबोधन और प्रश्न प्रतिरोध को सामूहिक संवाद बनाते हैं। यह प्रतिरोध ऊँचे मंच से बोला गया भाषण नहीं, बल्कि समाज के भीतर से उठी आवाज़ है। यहाँ प्रश्न पूछने वाला और उत्तर देने वाला दोनों समाज के लोग हैं। इसी कारण उनकी कविता पंचायती के विवेक का रूप लेती है।

'अपने मन ठकैए' जैसा संकेत प्रतिरोध की आंतरिक दिशा खोलता है। समाज का दोष बाहर है, पर मनुष्य के भीतर भी स्वार्थ है, डर है और उसके साथ पाखंड तथा आत्मभ्रम भी है। मण्डल जी केवल दूसरे को दोष नहीं देते। वे मनुष्य

से अपने मन की ठगी पहचानने का आग्रह करते हैं। जब व्यक्ति अपने मन को ठगता है, तब समाज का ढोंग और मजबूत होता है। जब व्यक्ति सचेत होता है, तब सामाजिक परिवर्तन की संभावना जन्म लेती है। इस रूप में मण्डल जी का प्रतिरोध आत्मालोचना से शुरू होता है।

मण्डल जी की ‘चुनौती’ स्वयं इस प्रतिरोधधर्मी काव्य-दृष्टि का संक्षिप्त सूत्र है। जीवन अपने में चुनौती है; समाज की विषमता, अन्याय, श्रम का अवमूल्यन, परिवार का विघटन और मनुष्य में विद्यमान विवेकहीनता उस चुनौती को और गंभीर बनाते हैं। मण्डल जी इस चुनौती से मुँह नहीं मोड़ते। वे पीड़ा को तो देखते ही हैं, पर पीड़ा को सजावटी गीत नहीं बनाते। वे कठिनाई को तो चिह्नित करते ही हैं, पर कायरता नहीं सिखाते। उसी प्रकार वे विघटन को भी तो देखते हैं, पर पुनर्निर्माण की संभावना पर विश्वास रखते हैं।

उनके प्रतिरोध में हिंसक उग्रता नहीं, नैतिक दृढ़ता है। वे समाज को तोड़ने की नहीं, जगाने की भाषा गढ़ते हैं। वे दरार दिखाते हैं, क्योंकि उसे भरने की आवश्यकता है। वे असंतुलन चिह्नित करते हैं, क्योंकि संतुलन की खोज उनका लक्ष्य है। वे पाखंड पर प्रहार करते हैं, ताकि सत्य और विवेक बचे। वे जाति, धन, प्रतिष्ठा, रूढ़ि और दिखावे की आलोचना करते हैं, क्योंकि मनुष्य का असली मान श्रम, व्यवहार, संवेदना और न्याय में है। इसी कारण मण्डल जी का प्रतिरोध लोकधर्मी और जीवनधर्मी, दोनों सिद्ध होता है।

समाज की दरार पर उनकी दृष्टि निराशावादी नहीं है। वे मानते हैं कि समाज में टूटन है, पर समाज के भीतर लोक-विवेक भी बचा है। किसान का श्रम, गरीब का धैर्य और स्त्री की सहनशीलता समाज को भीतर से संभालने की शक्ति देती है। उसी प्रकार परिवार की स्मृति, लोकभाषा की सच्चाई, गाँव की सामूहिकता, पंचायती की परंपरा और लोक-संस्कार का सार समाज को फिर से बनाने का आधार बनते हैं। कवि इस शक्ति की खोज करते हैं। इसी कारण उनकी सामाजिक कविता केवल अँधेरे का लेखा नहीं। वह अँधेरे में मार्ग खोजने का प्रयत्न है।

‘छुटि गेल’ जैसा रचनात्मक संकेत आधुनिक जीवन की विस्मृति पर टिप्पणी करता है। जब मनुष्य अपनी मिट्टी, पानी, चास-बास, लोक-स्मृति,

परिवार के साझा श्रम और गाँव की जीवन-लय से कटता है, तब समाज का असंतुलन बढ़ता है। आधुनिकता यदि स्मृतिहीन बनाती है, तो वह मुक्ति नहीं। वह नये प्रकार की परनिर्भरता है। मण्डल जी इस विस्मृति का विरोध करते हैं, पर केवल अतीत में लौटने का आग्रह भी नहीं करते। वे चाहते हैं कि लोकमूलक जीवन का सार बचा रहे और समाज नये विवेक से आगे बढ़े।

मण्डल जी के सामाजिक प्रतिरोध की विशिष्टता यह है कि वे विचार को लोक-स्थिति में मूर्त करते हैं। 'समाजक बान्ह-छेक' सुनते ही पाठक सामाजिक अवरोध देखता है। 'मरल घाट' कहते ही संवेदना की मृत्यु सामने आती है। 'नजैर कहाँ बदलल' कहते ही आधुनिकता और दृष्टिहीनता का विरोधाभास खुलता है। 'अपने मन ठकैए' कहते ही आत्मभ्रम का प्रश्न उभरता है। ये शीर्षक और संकेत स्वयं आलोचना बन जाते हैं। इस काव्य-शिल्प के कारण मण्डल जी का प्रतिरोध मात्र विचार या घोषणा बनकर नहीं रह जाता; वह पाठक के मन में टिक जाने वाले आलोचनात्मक बिंब में रूपान्तरित हो जाता है।

इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि मण्डल जी समाज में विद्यमान दरार, असंतुलन और प्रतिरोध को अत्यंत गंभीरता से चिह्नित करते हैं। वे समाज का दोष देखते हैं, पर समाज से घृणा नहीं करते; उनकी दृष्टि में समाज आलोचना का विषय भी है और सुधार की संभावना भी। वे जाति, वर्ग, पाखंड और रूढ़ि पर प्रश्न उठाते हैं। उसी प्रकार श्रम का अवमूल्यन, स्त्री-अन्याय, परिवार का विघटन, आत्मभ्रम और स्मृतिहीन आधुनिकता की समस्या भी उनके काव्यचिंतन में महत्त्वपूर्ण रूप से उपस्थित है। उनका प्रतिरोध विनाशक नहीं, बल्कि विवेक-जागृत प्रतिरोध है। यह प्रतिरोध लोकभाषा में बोलता है, सामाजिक अनुभव से उपजता है, मनुष्य की गरिमा को केंद्र में रखता है और समाज के पुनर्निर्माण की संभावना पर विश्वास करता है। इसी कारण मण्डल जी की सामाजिक कविता आलोचनात्मक प्रेम, विवेक और नैतिक साहस की महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति बनती है।

11. रचना का झुकाव: परिवार, स्त्री-संवेदना और लोक-संस्कार की ओर: जगदीश प्रसाद मण्डल जी की काव्यधारा में परिवार मात्र निजी जीवन का भावुक क्षेत्र नहीं। परिवार उनके लिए समाज की आरंभिक पाठशाला, संस्कार

की आधारभूमि, श्रम की प्राथमिक व्यवस्था और मनुष्य की नैतिकता परखने का महत्त्वपूर्ण स्थान है। समाज में जो दरार बाहर दिखाई देती है, उसका आरंभ प्रायः घर के भीतर से होता है। और समाज की जो संभावना बाहर उभरती है, उसका बीज भी घर, परिवार, संस्कार और संबंध में मिलता है। इसी कारण मण्डल जी की रचना का एक महत्त्वपूर्ण झुकाव परिवार, स्त्री-संवेदना और लोक-संस्कार की ओर भी है। इस झुकाव के बिना उनके लोकजीवन की काव्य-दृष्टि अधूरी रहती है।

मण्डल जी परिवार को निर्दोष और पूर्णतः पवित्र संस्था के रूप में नहीं देखते। परिवार में ममता, श्रम, स्नेह, संस्कार और पीढ़ियों की स्मृतियाँ हैं; किंतु उसके भीतर आपसी टकराव, अहंकार, लोभ, असमानता, स्त्री का अवमूल्यन, पीढ़ीगत तनाव और संबंधों का विघटन भी मौजूद है। यह द्वंद्व उनकी कविता को भावुकता से बचाता है। मण्डल जी परिवार की गरिमा तो स्वीकार करते हैं, पर परिवार में विद्यमान अन्याय पर चुप भी नहीं रहते। इसी कारण उनकी पारिवारिक कविता मात्र घर का गीत नहीं, समाज की सूक्ष्म आलोचना का रूप भी ग्रहण करती है।

उनके पद्य में माँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रतीक है। माँ मात्र जन्मदात्री नहीं। वह श्रम, सहनशीलता, स्मृति, करुणा, संस्कार और जीवन-संरचना का केंद्र है। ग्रामीण परिवार में माँ दैनंदिन श्रम की सबसे मौन और सबसे प्रभावी उपस्थिति है। भोजन, अन्न, जल, पशु, बालक, गृहस्थी और संस्कार माँ के दायित्व से जुड़े रहते हैं। दुःख, सहनशीलता और संबंधों का जोड़ भी उसी दायित्व का गहरा हिस्सा है। मण्डल जी इस अदृश्य श्रम को अनुभव करते हैं। इसलिए माँ की छवि उनकी रचना में मात्र करुणा से नहीं, जीवन की आधारभूत शक्ति से जुड़ी हुई समझ में आती है।

'माइक माइपन' शीर्षक रचना मण्डल जी की स्त्री-संवेदना का प्रमुख संकेत है। 'माइपन' शब्द माँ के जैविक अस्तित्व से आगे बढ़कर उसके संवेदनात्मक और नैतिक स्वरूप को खोलता है। माइपन मात्र ममता नहीं। वह दायित्व, श्रम और धैर्य से बनी ऐसी संवेदनात्मक शक्ति है, जो त्याग, क्षमा, संरक्षण और संबंध बचाने की क्षमता को अपने भीतर समेटे रहती है। समाज की

अनेक कठोरताओं के बीच परिवार यदि अपना संतुलन बनाए रखता है, तो उस संतुलन में माइपन की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। मण्डल जी इस माइपन को पूजा-मूर्ति के रूप में नहीं, जीवन के चलते श्रम और संवेदना के रूप में देखते हैं।

बेटी का प्रश्न मण्डल जी की काव्यधारा में गहरा सामाजिक अर्थ ग्रहण करता है। बेटी घर की केवल स्नेह-पात्र नहीं। वह समाज की दृष्टि की परीक्षा है। जो समाज बेटी को बोझ मानता है, वह अपनी करुणा, न्याय और मनुष्यता खोता है। 'बेटी किए' जैसे संकेत बेटी-संबंधी रूढ़ि, भय, विवाह-चिंता, दहेज, असुरक्षा और सामाजिक असंतुलन का प्रश्न खोलते हैं। मण्डल जी बेटी को दया का पात्र नहीं बनाते। वे समाज के विवेक से पूछते हैं कि जन्म, स्नेह और मनुष्यत्व के आधार पर बेटी और बेटे के बीच भेद क्यों? इस प्रश्न में स्त्री-संवेदना सामाजिक न्याय का प्रश्न बन उठती है।

बहन का संबोधन उनके पद्य में आत्मीयता और चेतावनी, दोनों लेकर आता है। 'हे बहिनी', 'हे बहिना, हे दीदी', 'हे बहिना केनाकऽ जेबै ओइ घरिया' जैसे शीर्षक मात्र भावुक पुकार नहीं। इनमें स्त्री की जीवन-यात्रा, विवाह, घर-परिवर्तन, असुरक्षा, ममता, भाई-बहन का संबंध, लोक-रीति और समाज की अपेक्षाओं का जटिल संसार खुलता है। बहन के संबोधन में स्नेह है, पर उस स्नेह के भीतर एक गहरी चिंता भी है: स्त्री का जीवन अपने घर से दूसरे घर तक, अपनी इच्छा से समाज की व्यवस्था तक, अपनी पीड़ा से लोक-संस्कार तक कितने दबावों से गुजरता है।

सास-बहू का संबंध मण्डल जी की काव्यधारा में पारिवारिक अंतर्विरोधों और लोकजीवन की वास्तविकताओं को उद्‌घाटित करने वाला महत्त्वपूर्ण प्रसंग है। 'सासु-पुतोहु वार्ता' जैसे संकेत बताते हैं कि परिवार केवल ममता से नहीं बनता; उसके निर्माण में श्रम-विभाजन, अपेक्षाएँ, अधिकार, मान-अपमान, पीढ़ीगत स्मृतियाँ और स्त्री-जीवन की जटिल स्थितियाँ भी सक्रिय रहती हैं। सास भी स्त्री है और बहू भी, किंतु पितृसत्तात्मक पारिवारिक संरचना कई बार एक स्त्री को दूसरी स्त्री के विरुद्ध खड़ा कर देती है। मण्डल जी इस टकराव को केवल घरेलू झगड़ा मानकर नहीं छोड़ते। वे इसके भीतर स्त्री-श्रम, पारिवारिक सत्ता, अपेक्षाओं और संबंधों को संचालित करने वाली गहरी सामाजिक संरचना को

पहचानते हैं।

पत्नी और गृहस्थ स्त्री का संसार भी उनके पद्य में महत्त्वपूर्ण है। पत्नी केवल प्रेमिका या गृहस्थी चलाने वाली पात्र नहीं। वह परिवार की व्यवस्था, अन्न का संयम, संबंध का संतुलन, बच्चों की देखभाल, घर का श्रम और भावात्मक सहारा, सबकी वाहक है। ग्रामीण समाज में पति-पत्नी का संबंध केवल निजी प्रेम का विषय नहीं, चास-बास, अर्थ-संकट, श्रम-विभाजन और सामाजिक प्रतिष्ठा से भी जुड़ा रहता है। मण्डल जी गृहस्थ स्त्री के इस बहुस्तरीय जीवन को समझते हैं। इसलिए उनकी स्त्री-संवेदना भावुक करुणा से आगे जाकर सामाजिक गहराई ग्रहण करती है।

लोक-संस्कार मण्डल जी के परिवार-संबंधी झुकाव का तीसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष है। जन्म, विवाह, पर्व, व्रत, गोधन, चौरचन, गंगा-स्नान, लोकगीत, सामूहिक भोजन, रिश्तेदारी, ओसारा-दालान की बातचीत, ये सब लोक-संस्कार के अंग हैं। मण्डल जी लोक-संस्कार को समाज की स्मृति और सामूहिक अनुभव का वाहक मानते हैं। वे लोक-संस्कार के कवि हैं, पर रूढ़ि के कवि नहीं। जहाँ संस्कार जीवन को जोड़ता है, संबंध को बचाता है, श्रम को अर्थ देता है और समाज को मानवीय बनाता है, वहाँ वह मूल्यवान है। जहाँ वही संस्कार भय, खर्च, भेदभाव, स्त्री-अन्याय या पाखंड में बदलता है, वहाँ वह प्रश्न के घेरे में आता है।

मण्डल जी की स्त्री-दृष्टि में करुणा है, पर केवल करुणा नहीं। वे स्त्री को निष्क्रिय पीड़िता के रूप में स्थिर नहीं करते। उनके यहाँ स्त्री श्रम करती है, सहती है, जोड़ती है, स्मृति बचाती है, परिवार को धारण करती है और कई बार समाज के विवेक की कसौटी बन जाती है। माँ के रूप में वह जीवन-संरचना है, बेटी के रूप में समाज की परीक्षा, बहन के रूप में आत्मीयता और असुरक्षा का संयुक्त बिंब, बहू के रूप में श्रम और अपेक्षा का संघर्ष, पत्नी के रूप में गृहस्थ जीवन की साझीदार। इस प्रकार स्त्री-संवेदना मण्डल जी की काव्यधारा में लोकजीवन की केंद्रीय अनुभूति बनती है।

परिवार की रचना में श्रम का प्रश्न विशेष महत्त्व रखता है। घर का श्रम प्रायः अदृश्य रहता है, विशेषतः स्त्री का श्रम। मण्डल जी इस अदृश्य श्रम को अनुभव करते हैं। अन्न पकाना, जल लाना, पशु संभालना, बच्चे पालना, बूढ़े की

सेवा, खेत से जुड़ी गृहस्थी, ऋतु के अनुसार भोजन और संग्रह, पर्व-त्योहार की तैयारी, ये सब मिलकर परिवार को चलाते हैं। यह श्रम केवल घर का काम नहीं। यह लोकजीवन की सतत व्यवस्था है। स्त्री-संवेदना और श्रम-संवेदना यहाँ एक-दूसरे से जुड़ जाती है।

मण्डल जी परिवार को समाज का आरंभिक नैतिक क्षेत्र मानते हैं। यदि परिवार में बेटी का सम्मान नहीं, बहू का मान नहीं, माँ के श्रम का मूल्य नहीं, वृद्ध की प्रतिष्ठा नहीं, बच्चे का संस्कार नहीं, तो निश्चित तौर पर समाज की नैतिकता भी अधूरी रह जाएगी। समाज की दरार घर से शुरू होती है। इसलिए परिवार पर लिखना उनके लिए निजी भावुक लेखन नहीं, सामाजिक आलोचना भी है। परिवार में उपस्थित लोभ, अहंकार, संपत्ति-विवाद, पीढ़ीगत तनाव और स्त्री-अन्याय समाज के व्यापक रोगों के छोटे रूप हैं।

उनकी कविता में पारिवारिक संबोधन बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 'माए', 'मैया', 'बहिनी', 'भैया', 'मीत', 'बेटी', 'पुतोहु' जैसे शब्द केवल संबोधन नहीं। ये संबंध-संरचना के संकेत हैं। इन शब्दों में लोकभाषा की ऊष्मा, संबंध की निकटता, सामाजिक अपेक्षा और नैतिक दबाव, सब उपस्थित हैं। मण्डल जी इन संबोधनों के माध्यम से कविता को घर-आँगन की आवाज़ से भर देते हैं। इससे कविता पाठक से सीधे संवाद करती है। वह ऊँचे आलोचनात्मक मंच से नहीं, लोकसंबंध के भीतर से बोलती है।

लोक-संस्कार और स्त्री-संवेदना का संबंध भी गहरा है। अनेक लोक-संस्कार स्त्री के श्रम पर टिके हैं। विवाह, पर्व, व्रत, अतिथि-सत्कार, जन्म-संस्कार, भोजन, गीत, संबंध-निर्वाह, सबमें स्त्री की सक्रिय उपस्थिति है। पर वही संस्कार कई बार स्त्री पर अतिरिक्त बोझ भी डालते हैं। मण्डल जी इस द्वंद्व को समझते हैं। वे लोक-संस्कार की जीवित शक्ति का सम्मान करते हैं, पर उसके रूढ़, दमनकारी और विवेकहीन रूप पर प्रश्न उठाते हैं। यह संतुलित दृष्टि उनकी पारिवारिक कविता को गहरी सामाजिक विश्वसनीयता देती है।

मण्डल जी की रचनाओं में परिवार स्मृति का क्षेत्र भी है। पिता, माँ, बाप-पुरखा, घर, आँगन, गाँव, रिश्तेदारी, विवाह और लोकरीति जीवन की स्मृति-संरचना बनाते हैं। स्मृति मनुष्य को जड़ नहीं बनाती; वह उसे जीवन की जड़ से

जोड़ती है। पर यदि स्मृति केवल गौरव का शुष्क ढाँचा बन जाए और वर्तमान जीवन की पीड़ा को न देखे, तो वह निरर्थक हो जाती है। मण्डल जी स्मृति को जीवन से जोड़ते हैं। परिवार की स्मृति लोकजीवन की निरंतरता का आधार बनती है, पर वह विवेकहीन अतीत-पूजा नहीं बनती।

परिवार और लोक-संस्कार के भीतर परिवर्तन का प्रश्न भी उपस्थित है। आधुनिक समय में परिवार की संरचना बदल रही है। संयुक्तता ढीली पड़ती है, परदेश बढ़ता है, श्रम-विभाजन बदलता है, स्त्री की स्थिति बदलती है, शिक्षा और आर्थिक दबाव नये प्रश्न लाते हैं। मण्डल जी परिवर्तन को रोकना नहीं चाहते, पर वे चाहते हैं कि परिवर्तन मनुष्यता और न्याय के साथ हो। यदि परिवर्तन संबंध को तोड़ता है, श्रम की अवमानना करता है, स्त्री को और अकेला करता है, वृद्ध को असुरक्षित करता है और लोक-संस्कार को केवल दिखावे में बदल देता है, तो वह विकास नहीं, विघटन है। यह चेतना उनकी पारिवारिक कविता में गहरे रूप में उपस्थित है।

मण्डल जी के यहाँ स्त्री-संवेदना का एक पक्ष मौन की पहचान भी है। स्त्री प्रायः बहुत कुछ कहती नहीं, पर उसका श्रम, प्रतीक्षा, सहनशीलता, थकान और आँखों की भाषा बहुत कुछ कहती है। कवि इस मौन को सुनता है। वह स्त्री के दुःख को केवल आँसू में नहीं, उसके श्रम, जिम्मेदारी और संबंध संभालने की शक्ति में भी देखता है। इसी कारण उनकी स्त्री-संवेदना संवेदनशील होते हुए भी दयावादी नहीं। वह मानवीय सम्मान की माँग करती है।

परिवार, स्त्री और लोक-संस्कार के प्रश्न मण्डल जी के व्यापक सामाजिक झुकाव से अलग नहीं हैं। गाँव की सामाजिक संरचना परिवारों से बनती है। परिवार का श्रम स्त्री और पुरुष, दोनों से बनता है। लोक-संस्कार परिवार और समाज को जोड़ते हैं। यदि परिवार टूटता है, तो समाज की सामूहिकता टूटती है। यदि स्त्री का मान घटता है, तो समाज की नैतिकता घटती है। यदि लोक-संस्कार पाखंड बन जाते हैं, तो समाज की स्मृति जड़ हो जाती है। इसलिए इस झुकाव को समझे बिना मण्डल जी के लोकजीवन-बोध को पूरा नहीं समझा जा सकता।

मण्डल जी की स्त्री-संवेदना में करुणा है, पर करुणा से अधिक आत्मीय समझ है। वे स्त्री को केवल रोती, सहती या दुःख भोगती हुई स्थिति में नहीं देखते।

वे उसकी व्यावहारिक बुद्धि, गृहस्थ-प्रबंधन, संबंधों की समझ, धैर्य, साहस और कई बार प्रतिरोध की क्षमता को भी पहचानते हैं। स्त्री परिवार की समस्या नहीं, उसकी सम्भावना भी है। यदि स्त्री का मान सुरक्षित नहीं, तो परिवार के संस्कार खोखले हो जाते हैं। यदि स्त्री का श्रम अदृश्य रहता है, तो घर का नैतिक आधार अधूरा रह जाता है। यदि बेटी असुरक्षित है, तो समाज का भविष्य असुरक्षित है। इसी कारण परिवार, स्त्री और लोक-संस्कार के प्रश्न मण्डल जी की काव्यधारा में एक साथ चलते हैं।

इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि मण्डल जी की रचना में परिवार, स्त्री-संवेदना और लोक-संस्कार जीवन के सहायक प्रसंग नहीं, बल्कि उनके काव्य-संसार के मूल तत्त्व हैं। परिवार सामाजिक नैतिकता का पहला धरातल है। स्त्री जीवन-संरचना, श्रम, सहनशीलता और संबंध की वाहक है। लोक-संस्कार सामूहिक स्मृति और जीवन की निरंतरता के आधार हैं। परंतु मण्डल जी इन तीनों का विवेकहीन महिमामण्डन नहीं करते। वे पारिवारिक अंतर्विरोधों, स्त्री के प्रति होने वाले अन्याय और लोक-संस्कारों में व्याप्त रूढ़ियों पर प्रश्न उठाते हैं। इस प्रकार उनकी कविता परिवार और लोकजीवन के भीतर निहित मानव-मूल्य, श्रम-सम्मान और सामाजिक न्याय की खोज करती है।

12. रचना का झुकाव: समय, मौसम और जीवन-परीक्षण की ओर: जगदीश प्रसाद मण्डल जी की काव्यधारा में समय और मौसम मात्र पृष्ठभूमि नहीं हैं। वे जीवन को परखने वाली सक्रिय शक्तियाँ हैं। समय मनुष्य को बदलता है, संबंधों को परखता है, श्रम का मूल्य सामने लाता है और स्मृति तथा आशा के बीच तनाव उत्पन्न करता है। मौसम देह को छूता है, खेत को प्रभावित करता है, किसान की प्रतीक्षा को तीखा बनाता है और परिवार की जीविका को असुरक्षित भी कर सकता है। मण्डल जी समय और मौसम को केवल प्रकृति के चक्र के रूप में नहीं देखते। वे उन्हें जीवन-परीक्षण की कसौटी के रूप में ग्रहण करते हैं।

उनके काव्य-संसार में रात-दिन का द्वंद्व बहुत महत्त्वपूर्ण है। 'राति-दिन' शीर्षक ही इस द्वंद्व की मूल संरचना खोलता है। रात केवल अँधेरा नहीं; वह श्रम के बाद की थकान, चिंता, असुरक्षा, आत्ममंथन और प्रतीक्षा का समय है। दिन

केवल उजाला नहीं; वह श्रम, संघर्ष, सामाजिक व्यवहार और जीवन-कार्य का क्षेत्र है। रात और दिन मिलकर जीवन की गति बनाते हैं। मण्डल जी रात-दिन को मनुष्य के भीतर और बाहर चल रहे अनुभवों के प्रतीक के रूप में देखते हैं। जीवन केवल उजाले से नहीं बनता; अँधेरे से गुजरने की क्षमता भी जीवन का हिस्सा है।

साँझ और भोर भी उनके काव्य में परिवर्तन के क्षण हैं। साँझ दिन के श्रम का अवसान है, पर वह विश्राम ही नहीं, चिंता और अनिश्चितता भी ला सकती है। भोर आशा का संकेत है, पर वह श्रम के नये आरंभ की पुकार भी है। किसान के लिए भोर का अर्थ है खेत की ओर बढ़ना, पशु खोलना, पथार देखना और मौसम की चाल पढ़ना। गृहस्थ के लिए भोर घर की दिनचर्या का आरंभ है। इस प्रकार समय का प्रत्येक क्षण जीवन की किसी न किसी जिम्मेदारी से जुड़ा है। मण्डल जी समय को अमूर्त दार्शनिकता में नहीं, जीवन की ठोस लय में पकड़ते हैं।

जेठ और माघ उनके काव्य में विशेष अर्थ ग्रहण करते हैं। 'तीन जेठ एगारहम माघ' शीर्षक में ही ऋतु का तीखा द्वंद्व है। जेठ का ताप और माघ की ठंड, दोनों किसान की देह और श्रम की परीक्षा हैं। जेठ में धरती तपती है, देह जलती है, पानी का संकट बढ़ता है और श्रम कठिन होता है। माघ में ठंड, जाड़ा, पानी, कुहासा और देह की सिहरन जीवन को परखती है। मण्डल जी इन ऋतुओं को केवल मौसम की सूचना के रूप में नहीं लेते। वे इन्हें श्रम, अभाव, धैर्य और जीवन-संघर्ष की कसौटी मानते हैं।

बरसात और धूप का द्वंद्व भी मण्डल जी की कविता में किसान-जीवन का मूल अनुभव है। बरसात चाहिए, पर अधिक बरसात बाढ़ बन सकती है। धूप चाहिए, पर अधिक धूप सूखे का कारण बन सकती है। किसान के लिए मौसम वरदान और संकट, दोनों है। यही द्वैध मण्डल जी के प्रकृति-बोध को गहरा बनाता है। वे मौसम को रोमानी दृश्य नहीं मानते। मौसम खेत की उपज, अन्न की सुरक्षा, पशुधन, परिवार की अर्थव्यवस्था और मनुष्य की उम्मीद को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। इसलिए मौसम उनकी कविता में जीवन-परीक्षण का सक्रिय तत्त्व बनता है।

अगहन और पूस अन्न, प्रतीक्षा और आशंका के समय हैं। अगहन में धान

की आशा है, श्रम का फल है, परिवार की राहत है। पर यह राहत निश्चित नहीं; उसके पीछे मौसम, श्रम, पानी और भाग्य की लंबी परीक्षा है। पूस में ठंड, अभाव, संग्रह की चिंता और आगे के समय का अनुमान है। किसान का जीवन कैलेण्डर से नहीं, ऋतु की वास्तविकता से चलता है। मण्डल जी ऋतु को केवल नाम से नहीं, उसके जीवनगत प्रभाव से पहचानते हैं। इसलिए उनके काव्य में अगहन-पूस, जेठ-माघ, बरसात-धूप सब जीवन के अलग-अलग अध्याय बनते हैं।

समय मण्डल जी के यहाँ स्मृति का वाहक भी है। बीता हुआ समय केवल अतीत नहीं। वह परिवार, गाँव, खेत, जलस्रोत, लोक-संस्कार, बाप-पुरखा, श्रम और संघर्ष की स्मृति लेकर आता है। पर स्मृति स्थिर नहीं। वर्तमान समय उसे परखता है। जो स्मृति जीवन को बल देती है, वह मूल्यवान है। जो स्मृति रूढ़ि बनकर मनुष्य को बाँधती है, वह प्रश्न के घेरे में आती है। मण्डल जी समय के इस स्मृति-संबंध को गहरे रूप से समझते हैं। उनके काव्य में अतीत, वर्तमान और भविष्य एक-दूसरे से संवाद करते हैं।

समय का एक पक्ष क्षरण भी है। पोखर सूखता है, खेत परती होता है, परिवार टूटता है, लोक-संस्कार बदलते हैं, मनुष्य परदेश जाता है, गाँव की सामूहिकता ढीली पड़ती है। यह सब समय के भीतर घटता है। मण्डल जी इन परिवर्तनों को केवल दुखभरी स्मृति के रूप में नहीं देखते। वे पूछते हैं कि यह क्षरण क्यों हो रहा है? श्रम का मान क्यों घट रहा है? जलस्रोत क्यों सूख रहे हैं? संबंध क्यों ढीले हो रहे हैं? मनुष्य अपनी मिट्टी-पानी से क्यों कट रहा है? इस प्रकार समय उनकी कविता में आलोचनात्मक प्रश्न बन जाता है।

मौसम देहगत अनुभव के रूप में भी उपस्थित है। ठंड हड्डी को छूती है, धूप देह को जलाती है, कीचड़ पाँव रोकता है, पानी देह को कंपाता है, धूल आँखों में भरती है। किसान और मजदूर के लिए मौसम बाहरी दृश्य नहीं, देह पर लिखा हुआ अनुभव है। मण्डल जी इस देहगत अनुभव को कविता में लाते हैं। इसलिए उनकी कविता में ऋतु केवल कैलेण्डर की पंक्ति नहीं, शरीर, श्रम और जीविका की सच्चाई है।

समय और मौसम के माध्यम से मण्डल जी मनुष्य की जिजीविषा को भी परखते हैं। जीवन कठिन है, मौसम अनिश्चित है, समय निर्दय है, पर मनुष्य फिर

भी जीता है। किसान फिर खेत में उतरता है, गृहस्थ फिर परिवार संभालता है, स्त्री फिर काम में लगती है, गरीब फिर आशा करता है। मण्डल जी इस 'फिर' को बहुत गहरे अर्थ में समझते हैं। यही 'फिर' जीवन-जिजीविषा का संकेत है। समय मनुष्य को तोड़ता है, पर मनुष्य समय के सामने पूरी तरह हारता नहीं। इसी संघर्ष में जीवन का नैतिक बल प्रकट होता है।

समय का संबंध मृत्यु-बोध से भी है। जीवन घटता है, उम्र बढ़ती है, संबंध बदलते हैं, शरीर थकता है, स्मृति गहरी होती है। मण्डल जी मृत्यु को अचानक आने वाली घटना भर नहीं मानते। वह समय की निरंतर उपस्थिति में अनुभव होने वाला सत्य है। पर यह मृत्यु-बोध उन्हें निराश नहीं करता। उलटे यह जीवन को अधिक अर्थपूर्ण बनाता है। समय सीमित है, इसलिए श्रम का अर्थ है; संबंध सीमित हैं, इसलिए ममता का अर्थ है; जीवन नश्वर है, इसलिए नैतिक साहस का अर्थ है। मण्डल जी के काव्य में समय और मृत्यु-बोध जीवन की गहराई को बढ़ाते हैं।

उनकी कविता में समय सामाजिक भी है। समाज का समय व्यक्ति के समय से अलग नहीं। यदि समाज बदलता है, तो व्यक्ति बदलता है। यदि समाज जड़ है, तो व्यक्ति का जीवन भी बाधित होता है। यदि समय में न्याय की चेतना नहीं आती, तो विकास अधूरा रहता है। मण्डल जी समय को केवल प्राकृतिक चक्र में नहीं, सामाजिक परिवर्तन की कसौटी पर भी देखते हैं। वे पूछते हैं: क्या सचमुच समय बदला? क्या नज़र बदली? क्या मनुष्य का व्यवहार बदला? क्या श्रम का मान बढ़ा? क्या स्त्री का सम्मान हुआ? क्या लोक-न्याय स्थापित हुआ? इस प्रकार समय उनकी कविता में परिवर्तन की वास्तविक परीक्षा बनता है।

'दीनक दिन केना', 'दिन घटतै', 'पकड़ समय', 'समय केर' और 'समय-साल' जैसे रचना-संकेत बताते हैं कि मण्डल जी समय को बाहर से देखने वाला विषय नहीं मानते। समय उनके यहाँ मनुष्य के भीतर प्रवेश करता है। वह दिनचर्या में उतरता है, देह पर असर डालता है, मन को बेचैन करता है, संबंधों को बदलता है और समाज से उत्तर माँगता है। समय केवल बीतता नहीं; वह प्रश्न करता है। इसी कारण उनका समय-बोध काव्य में अनुभव, विवेक और सामाजिक आलोचना का रूप लेता है।

मौसम और समय का संबंध किसान की अर्थव्यवस्था से सीधा है। ऋतु बिगड़ी तो अन्न बिगड़ा; पानी बदला तो खेत बदला; समय पर वर्षा न हुई तो श्रम संकट में पड़ा; बाढ़ आयी तो वर्षभर की आशा डूब गयी। मण्डल जी इस अर्थव्यवस्था को समझते हैं। वे मौसम को प्रकृति-चित्र नहीं बनाते, बल्कि श्रम और अन्न का प्रश्न बनाते हैं। इसी कारण उनकी कविता किसान के समय को पहचानती है। किसान का समय शहरी घड़ी का समय नहीं; वह बीज, रोपनी, निराई, कटनी, जल, धूप, ऋतु और अन्न का समय है।

समय की गति में परिवार भी परखा जाता है। संकट का समय परिवार की ममता और स्वार्थ, दोनों को उजागर करता है। अभाव का समय संबंधों की मजबूती परखता है। मृत्यु का समय सामाजिक व्यवहार की परीक्षा लेता है। विवाह, जन्म, पर्व और श्राद्ध जैसे अवसर लोक-संस्कार की वास्तविकता खोलते हैं। मण्डल जी पारिवारिक समय को भी सामाजिक अर्थ में पढ़ते हैं। घर का समय समाज से अलग नहीं; वह उसी सामाजिक संरचना का सूक्ष्म रूप है।

ऋतु-चक्र और जीवन-चक्र के बीच भी उनकी कविता गहरा संबंध बनाती है। बाल्य, यौवन, परिपक्वता, बुढ़ापा और मृत्यु जैसे जीवन-क्षण ऋतु की तरह आते हैं। खेत की तरह मनुष्य भी समय से गुजरता है। कहीं हरियाली है, कहीं सूखा है, कहीं प्रतीक्षा है, कहीं कटनी है, कहीं परतीपन है। मण्डल जी इस साम्य को सजावटी रूपक के रूप में नहीं लेते। वे जीवन और प्रकृति की आपसी निर्भरता के रूप में इसे देखते हैं।

मण्डल जी का समय-बोध लोकभाषा से निर्मित है। वे समय को केवल दार्शनिक शब्दावली में नहीं पकड़ते। वे राति-दिन, साँझ-भोर, अगहन-पूस, जेठ-माघ, दिन घटतै, समय केर, अबिते अगहन जैसे लोक-संकेतों से समय का अनुभव रचते हैं। इन शब्दों में गाँव की घड़ी चलती है। यही घड़ी खेत, परिवार, श्रम, अन्न और स्मृति से जुड़ी है। इसीलिए उनकी कविता में समय पढ़ने की वस्तु नहीं, जीने की चीज़ बन जाता है।

मण्डल जी की काव्यधारा में समय-बोध केवल निराशाजनक नहीं। समय परीक्षा लेता है, पर परिवर्तन की संभावना भी देता है। भोर आती है, बीज फिर बोया जाता है, खेत फिर जोता जाता है, समाज फिर सोच सकता है, मनुष्य फिर

उठ सकता है। यही पुनरारम्भ का भाव उनकी कविता को जीवनोन्मुख बनाता है। यदि समय केवल क्षरण होता, तो कविता निराशा में समाप्त हो जाती। पर मण्डल जी समय के भीतर पुनर्निर्माण की संभावना देखते हैं।

इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि मण्डल जी की रचना का झुकाव समय, मौसम और जीवन-परीक्षण की ओर गहरे रूप में स्थित है। उनके यहाँ समय कैलेण्डर नहीं, अनुभव का ताप है। मौसम प्रकृति का दृश्य मात्र नहीं, श्रम और जीवन की कसौटी भी है। रात-दिन, भोर-साँझ, जेठ-माघ, बरसात-धूप, अगहन-पूस, बाढ़-सूखा, सब मनुष्य और समाज को परखते हैं। इस परीक्षण में किसान का धैर्य, स्त्री का श्रम, परिवार की ममता, समाज का विवेक और मनुष्य की जिजीविषा स्पष्ट होती है। मण्डल जी का समय-बोध जीवन की कठिन परीक्षा से गुजरकर भी आशा और नैतिक बल की संभावना बचाए रखता है।

13. रचना का झुकाव: जीवन-जिजीविषा, मृत्यु-बोध और नैतिक साहस की ओर: जगदीश प्रसाद मण्डल जी की काव्यधारा में जीवन केवल सुख, सौन्दर्य और आशा का सहज प्रवाह नहीं। यह जीवन कठिनाई, अभाव, श्रम, टूटन, मृत्यु, सामाजिक दबाव और नैतिक परीक्षा के बीच बनता है। मण्डल जी जीवन की कठिनाइयों से आँख नहीं मूँदते। वे अभाव, मृत्यु, टूटन, बीमारी, श्रम, अन्याय, अकेलापन और समाज की चोट को देखते हैं। पर वे इन सबको जीवन का अंतिम सत्य नहीं मानते। इनके भीतर भी मनुष्य के उठने की शक्ति, नैतिक धैर्य, श्रम का बल, संबंध की ऊष्मा और फिर जीने की जिद खोजते हैं। इसी कारण उनकी कविता निराशा की कविता नहीं, संघर्ष से उपजी आशा की कविता है।

मण्डल जी की जीवन-जिजीविषा भावुक आशावाद नहीं है। वह ऐसी आशा नहीं, जो दुःख को छिपा दे, अभाव को सुन्दर शब्दों से ढँक दे और संघर्ष को केवल प्रेरक कथन बना दे। उनकी कविता दुःख का भार स्वीकार करती है। वह जीवन की थकान, देह का टूटना, मन का अँधेरा, समाज की कठोरता और मृत्यु की निकटता को सामने रखती है। पर इसी यथार्थ के बीच वह मनुष्य की बची हुई आंतरिक शक्ति को भी पहचानती है। यह पहचान ही उनकी जिजीविषा का आधार है।

‘सुखाएल पोखरिक जाइठ’ की ‘फेरो हम’ जीवन-जिजीविषा का अत्यंत महत्त्वपूर्ण संकेत है। ‘फेरो’ शब्द में विशेष अर्थ है। जीवन एक बार नहीं, अक्सर कई बार टूटता है। मनुष्य आशा खोता है, फिर आशा बनाता है। खेत सूखता है, फिर बीज रखा जाता है। पोखर सूखता है, फिर पानी की प्रतीक्षा रहती है। संबंध टूटते हैं, फिर उन्हें जोड़ने की कोशिश होती है। ‘फेरो हम’ का अर्थ है: हम फिर उठेंगे, फिर जिएँगे, फिर श्रम करेंगे, फिर समाज से प्रश्न करेंगे और फिर मनुष्य होने का अर्थ बचाएँगे।

इस ‘फेरो’ में केवल व्यक्ति की जिद नहीं, लोकजीवन की सामूहिक शक्ति भी है। गाँव का जीवन बार-बार संकट से गुजरता है। बाढ़ आती है, सूखा पड़ता है, ऋण बढ़ते जाता है, परदेश बढ़ता है, मृत्यु आती है, फिर भी जीवन रुकता नहीं। स्त्री घर संभालती है, किसान खेत में उतरता है, मजदूर श्रम करता है, परिवार टूटकर भी संबंध खोजता है। मण्डल जी इस पुनरारम्भ को लोकजीवन की मूल शक्ति के रूप में देखते हैं।

मण्डल जी के यहाँ मृत्यु-बोध भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। मृत्यु उनके लिए केवल जीवन का अंत नहीं। वह जीवन की सीमितता, देह की अस्थिरता, संबंधों की नश्वरता और समय की कठोरता का बोध कराती है। पर मृत्यु-बोध उन्हें जीवन से विरक्त नहीं करता। उलटे वह जीवन के मूल्य को अधिक स्पष्ट करता है। मृत्यु का स्मरण मनुष्य को झूठी प्रतिष्ठा, लोभ, पाखंड और अहंकार की सीमा दिखाता है। जब जीवन नश्वर है, तब मनुष्य को श्रम, प्रेम, न्याय और विवेक के साथ जीना चाहिए। इस अर्थ में मृत्यु-बोध मण्डल जी की कविता में जीवन-विरोधी नहीं, जीवन-संवर्धक है।

‘तीन जेठ एगारहम माघ’ में ‘भूत बनि भुतियाएल’ जैसा संकेत जीवन और मृत्यु के बीच की विचित्र अवस्था खोलता है। मनुष्य जीवित रहते हुए भी कभी जीवनहीन स्थिति में पहुँच सकता है। गरीबी, अभाव, अपमान, श्रम का अवमूल्यन, सामाजिक अन्याय और भीतरी टूटन मनुष्य को ऐसा बना देते हैं कि वह साँस तो लेता रहता है, पर जीवन की सार्थक अनुभूति से कट जाता है। मण्डल जी इस आधा-जीवन, आधा-मृत्यु स्थिति को देखते हैं। पर वहाँ भी केवल डर नहीं, आत्म-पहचान की संभावना है। जब मनुष्य अपनी भुतियायी हुई अवस्था

को पहचानता है, तब उसके भीतर पुनः जीने की इच्छा जाग सकती है।

'सतबेध' की 'जीवन' और 'जिनगीक बीच जिनगी' जैसी रचना-संकेत जीवन की बहुस्तरीयता को खोलते हैं। जीवन मात्र जैविक अस्तित्व नहीं; बचना और सचमुच जीना, दोनों में गहरा अंतर है। मनुष्य साँस ले सकता है, पर यदि जीवन में श्रम का मान, संबंध की आत्मीयता, आत्मसम्मान और न्याय न हो, तो उसका जीवन अधूरा रह जाता है। 'जिनगीक बीच जिनगी' इस बात का संकेत है कि बाहरी जीवन के भीतर एक आंतरिक जीवन भी है। वह विवेक, साहस, आत्मबल, करुणा, संबंध और नैतिक दायित्व से बनता है। मण्डल जी मनुष्य के इसी अंतर्जीवन को अपनी कविता में खोजते हैं।

जीवन-जिजीविषा का संबंध श्रम से गहरा है। जो मनुष्य श्रम करता है, वह जीवन से सक्रिय रूप से जुड़ा रहता है। किसानी जीवन के विविध आयाम - बीज बचाना, चौर में उतरना, धान काटना, खेत जोतना और पोखर संभालना - सब जीने के कर्म हैं। मजदूर का देह से काम करना, स्त्री का घर संभालना और अभाव के बीच गृहस्थी चलाना भी जीवन का कर्म है। मण्डल जी की कविता में श्रम जिजीविषा का मूर्त रूप बनता है। श्रम करता हुआ मनुष्य हारकर भी पूरी तरह हारा हुआ नहीं रहता। उसका हाथ जीवन की प्रक्रिया में सहभागी रहता है।

नैतिक साहस मण्डल जी की काव्यधारा का तीसरा प्रमुख तत्त्व है। यह साहस केवल बाहरी वीरता नहीं। यह सत्य कहने का साहस है, समाज की दरार पहचानने का साहस है, पाखंड पर प्रश्न उठाने का साहस है, श्रमशील मनुष्य के पक्ष में खड़े होने का साहस है और कठिन जीवन के बावजूद मनुष्य की गरिमा बचाने का साहस है। मण्डल जी की कविता में नैतिक साहस प्रायः शांत स्वर में आता है। वह शोर नहीं करता, पर भीतर से अडिग रहता है।

'चुनौती' जीवन-जिजीविषा की संपूर्ण भावभूमि को उद्घाटित करने वाला शब्द है। जीवन चुनौती है, क्योंकि वह मनुष्य को अनुकूल नहीं, बल्कि प्रतिकूल परिस्थितियों में परखता है। अभाव, ऋण, बाढ़, सूखा, परदेश, पारिवारिक विघटन और विभाजनकारी सामाजिक बंधन, ये सभी जीवन की चुनौतियाँ हैं। स्त्री की असुरक्षा, श्रम का अवमूल्यन, रोग और मृत्यु भी इसी चुनौती

के विभिन्न रूप हैं। परंतु मण्डल जी की दृष्टि में चुनौती केवल संकट का नाम नहीं; वह मनुष्य के धैर्य, आत्मबल और जूझने की क्षमता की परीक्षा भी है।

जीवन-जिजीविषा और मृत्यु-बोध के बीच मण्डल जी की कविता संतुलन बनाती है। वे मृत्यु को कभी भी नकारते नहीं, पर मृत्यु-केन्द्रित निराशा भी कभी नहीं रचते। वे जीवन की टूटन को देखते हैं, पर टूटन को अंतिम सत्य भी नहीं मानते। 'फेरो हम' काव्य का स्वर इसी संतुलन का स्वर है। मनुष्य मर-मरकर जीता है, क्योंकि जीवन केवल साँस की निरंतरता नहीं। वह जीने की जिद, स्मृति, श्रम, प्रेम, लोक-संबंध और नैतिक विश्वास से बनता है। इसी कारण मण्डल जी की काव्यधारा में मृत्यु-बोध जीवन-जिजीविषा को और गहरा बनाता है।

किसान की जिजीविषा इस झुकाव का अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष है। किसान के जीवन में निश्चितता कम और अनिश्चितता अधिक है। बीज बोया, पर वर्षा क्या करेगी? धान लगा, पर बाढ़ की मार क्या होगी? खेत जोता, पर बाजार का मूल्य क्या मिलेगा? श्रम किया, पर ऋण कितना घटेगा? इस अनिश्चितता के बाद भी किसान हर साल फिर आरंभ करता है। यह 'फिर आरंभ' मण्डल जी की जीवन-दृष्टि का केंद्र है। यहाँ किसान की जिद जीवन की जिद बनती है। मण्डल जी किसान को केवल दुःख का प्रतीक नहीं मानते; वे उसे जिजीविषा के आदर्श के रूप में ही देखते हैं।

स्त्री की जिजीविषा भी उनकी काव्यधारा में गहरी है। माँ अभाव में घर चलाती है। बेटी सामाजिक दबाव के बीच अपने अस्तित्व का प्रश्न बनती है। बहन घर-परिवर्तन की पीड़ा के साथ चलती है। बहू श्रम और अपेक्षा के बीच परिवार में अपना स्थान खोजती है। पत्नी गृहस्थी को ढहने से बचाती है। स्त्री जीवन का यह मौन संघर्ष जीवन-जिजीविषा का सूक्ष्म रूप है। मण्डल जी स्त्री को मात्र दुःख की पात्र नहीं मानते। वे उसके धैर्य, श्रम, जीवन-संरचना की क्षमता और नैतिक बल को अनुभव करते हैं।

उनकी कविता में मृत्यु-बोध अनेक प्रतीकों द्वारा व्यक्त होता है। सूखा पोखर, मरा घाट, ढहा घर, परती मिट्टी और घटता दिन अलग-अलग मृत्यु-सूचक बिंब हैं। अँधेरा, थकी देह, टूटता समाज और भुतियाया हुआ मन भी जीवन-क्षय

के संकेत बनते हैं। पर हर बिंब में पुनः जीवन की संभावना भी छिपी है। सूखा पोखर फिर पानी माँगता है। परती मिट्टी फिर चास चाहती है। ढहा घर पुन: बन सकता है। अँधेरे के बाद भोर की संभावना है। इस प्रतीकात्मक संरचना में मण्डल जी निराशा के बीच संभावना का बीज खोजते हैं।

नैतिक साहस का एक रूप सत्य-दृष्टि भी है। जीवन की कठिनाई देखना और उसे छिपाना नहीं, यह स्वयं साहस है। समाज की दरार देखना, किसान का अभाव कहना, स्त्री के श्रम को सामने लाना और पाखंड की आलोचना करना, ये सब साहित्यिक साहस हैं। अपने मन की ठगी पहचानना और मृत्यु-बोध स्वीकार करना भी साहस है। मण्डल जी मिठास की आड़ में सत्य नहीं छिपाते। वे कई बार कठोर बात कहते हैं, पर घृणा से नहीं। वे चोट दिखाते हैं, पर उपचार की आकांक्षा के साथ। यह आलोचनात्मक करुणा उनके नैतिक साहस का विशेष रूप है।

उनके काव्य-स्वर में जीवन-जिजीविषा लोकध्वनि द्वारा व्यक्त होती है। वे कठिन दार्शनिक शब्दावली में जीवन का अर्थ नहीं समझाते। वे 'फेरो', 'जिनगी', 'मन', 'धार', 'माटि-पोखैर', 'दिन-राति', 'बीआ-चास', 'माए' और 'गाम' जैसे शब्दों द्वारा जीवन का प्रश्न उठाते हैं। इस लोकभाषा में जीवन की जिद अधिक स्वाभाविक रूप से प्रकट होती है। साधारण शब्द असाधारण अर्थ वहन करते हैं। यही मण्डल जी की काव्यशक्ति है।

मृत्यु-बोध उनकी कविता में दार्शनिक उपदेश के रूप में नहीं आता, बल्कि लोकजीवन के अनुभव के रूप में आता है। गाँव में मृत्यु सामूहिक अनुभव होती है। घर, घाट, समाज, रीति-रिवाज, परिवार, स्मृति, कर्ज, श्रम और संबंध, सब पर उसका असर पड़ता है। 'मरल घाट' जैसा बिंब मृत्यु को मात्र जैविक घटना नहीं रहने देता; वह सामुदायिक संवेदना के क्षय का संकेत बन जाता है। यदि समाज मृत्यु के समय भी जीवित करुणा नहीं रखता, तो वह भीतर से मर रहा है। इस प्रकार मृत्यु-बोध सामाजिक आलोचना में बदल जाता है।

जीवन-जिजीविषा मण्डल जी की कविता में आत्मबल से जुड़ जाती है। 'अपन बल' का भाव इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य बाहरी सहारे पर हमेशा

निर्भर नहीं रह सकता। उसे अपने श्रम, अपने विवेक, अपने धैर्य, अपने नैतिक साहस, अपने सामाजिक संबंध और अपनी मिट्टी-पानी पर भरोसा करना पड़ता है। यह आत्मबल अहंकार नहीं है। यह जीवन को संभाले रखने की शक्ति है। मण्डल जी मनुष्य में निहित बल पहचानने की प्रेरणा देते हैं। इसी कारण उनकी जिजीविषा सक्रिय और कर्मप्रधान है।

उनकी काव्यधारा में टूटन का बोध अत्यंत व्यापक है। घर ढहता है, समाज दरकता है। मन ठगता है, दृष्टि नहीं बदलती, परिवार में तनाव बढ़ता है। पर इस टूटन के बीच कविता लगातार प्रश्न करती है: क्या फिर बनना संभव नहीं? क्या मनुष्य फिर श्रम नहीं कर सकता? क्या समाज का विवेक नहीं जाग सकता? इस प्रश्नात्मकता में जीवन-जिजीविषा का मूल स्वर है। और यह प्रश्न निराशा का नहीं, जागरण का साधन बनकर आता है।

नैतिक साहस का संबंध लोक-न्याय से भी है। अन्याय देखकर चुप रहना मण्डल जी को स्वीकार नहीं है। किसान के श्रम के अवमूल्यन, स्त्री के असम्मान, जाति-भेद और पाखंड के विरुद्ध उनकी कविता खड़ी होती है। धन के अहंकार, परदेश की विवशता, परिवार के भीतर के अन्याय और समाज की विभाजनकारी संरचनाओं के विरुद्ध भी वे काव्यात्मक प्रतिरोध रचते हैं। उनका प्रतिरोध तलवार की उग्रता नहीं, शब्द की सच्चाई है। यह प्रतिरोध लोकभाषा में व्यक्त होता है, किंतु उसकी भाषा कमजोर नहीं; वह समाज को भीतर तक झकझोरती है।

इस काव्यधारा में जीवन-जिजीविषा और करुणा एक-दूसरे से अलग नहीं रहतीं। करुणा मनुष्य की पीड़ा को देखती है और जिजीविषा उसी पीड़ा के भीतर उठने की शक्ति खोजती है। मात्र करुणा कविता को विलाप में बदल सकती है, जबकि मात्र जिजीविषा दुःख की गंभीरता को हल्का बना सकती है। मण्डल जी दोनों को संतुलित करते हैं। वे दुःख का वजन नहीं घटाते, पर जीवन की संभावना भी नहीं छोड़ते। इसी संतुलन के कारण उनकी कविता पाठक को मात्र दुःखी नहीं करती, बल्कि मनुष्य में निहित नैतिक बल को भी जगाती है।

मण्डल जी की जीवन-जिजीविषा लोकसमाज की सामूहिकता से भी

गहरे रूप में जुड़ी है। वे मनुष्य के जीवन को अकेले अस्तित्व के रूप में नहीं, संबंध, श्रम और लोक-संरचना से निर्मित सामूहिक अनुभव के रूप में देखते हैं। गाँव, परिवार, खेत, श्रम-साझेदारी, पर्व-त्योहार, लोकगीत, पंचायती, जलस्रोत और सामाजिक संबंध जीवन को सहारा देते हैं। जब सामूहिकता कमजोर पड़ती है, तब मनुष्य की जिजीविषा पर दबाव बढ़ता है। जब समाज मिलकर दुःख सहता है, तब जीवन की शक्ति बढ़ती है। मण्डल जी सामूहिक जीवन के इस सहारा-तत्त्व को महत्त्व देते हैं।

समय-बोध, मौसम-बोध और मृत्यु-बोध मिलकर मण्डल जी की काव्यधारा में जीवन को निरंतर परखने की स्थिति बनाते हैं। समय मनुष्य के धैर्य और विवेक को जाँचता है, मौसम उसके श्रम और जीवन-निर्वाह को परीक्षा में रखता है और मृत्यु-बोध जीवन की अस्थिरता सामने लाकर उसके नैतिक साहस को परखता है। रात-दिन बदलते हैं, ऋतु बदलती है, शरीर बदलता है, समाज बदलता है। पर हर बदलाव मनुष्य से उत्तर माँगता है। यदि मनुष्य विवेकहीन रहा, तो समय उसे पराजित करेगा। यदि वह श्रम, धैर्य, आत्मबल और न्याय के पक्ष में रहा, तो कठिन समय भी जीवन का पाठ बन सकता है।

इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि मण्डल जी की रचना का झुकाव जीवन-जिजीविषा, मृत्यु-बोध और नैतिक साहस की ओर अत्यंत सघन है। वे जीवन की कठिनाइयों से आँख नहीं मूँदते। वे अभाव, मृत्यु, टूटन, सामाजिक चोट, श्रम की थकान, स्त्री की मौन पीड़ा, किसान की अनिश्चितता और मन के अँधेरे को चिह्नित करते हैं। पर वे इन सबको अंतिम सत्य नहीं मानते। उनकी काव्य-दृष्टि दुःख को स्वीकार करती है, पर दुःख के सामने आत्मसमर्पण नहीं करती। इसी कारण वे 'फेरो' जीने की शक्ति खोजते हैं, आत्मबल का मान करते हैं और श्रम को जीवन का आधार बनाते हैं।

इतना ही नहीं, मण्डल जी मृत्यु-बोध को निष्क्रिय निराशा में नहीं, कर्म-बोध और नैतिक जागरण में बदलते हैं। उनकी कविता में मृत्यु जीवन का अंतिम भय मात्र नहीं, बल्कि मनुष्य के विवेक, साहस और संबंध-बोध को परखने की कसौटी बन जाती है। वे मनुष्य को यह विश्वास देते हैं कि जीवन की कठोरतम स्थिति में भी श्रम, स्मृति, करुणा, लोक-संबंध और आत्मसम्मान के सहारे जीने

की संभावना बची रहती है।

इसी कारण उनकी काव्यधारा केवल दुःख के विवरण तक सीमित नहीं रहती। वह जीवन की अदम्य जिद, लोकधर्मी साहस, नैतिक प्रतिरोध और मानवीय पुनरारंभ की कविता बन जाती है। इस काव्यधारा में मनुष्य टूटता है, पर समाप्त नहीं होता; वह संकट से गुजरता है, पर अपनी गरिमा नहीं छोड़ता; वह मृत्यु को देखता है, पर जीवन से मुँह नहीं मोड़ता। यही मण्डल जी की जीवनोन्मुखी काव्य-दृष्टि की सबसे बड़ी पहचान है। ❑

चतुर्थ खंड:

भाषा, शिल्प और प्रतीक-योजना का झुकाव

14. लोकभाषा, ध्वनि और आवृत्तिमय शिल्प: जगदीश प्रसाद मण्डल जी की काव्यधारा को समझने के लिए उनकी भाषा, ध्वनि और आवृत्तिमय शिल्प पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। उनकी कविता कथ्य के बल पर खड़ी नहीं होती; उनकी कविता का प्रभाव उस लोकधर्मी भाषिक धरातल से बनता है, जो जीवन के प्रत्यक्ष व्यवहार से उपजा है। मण्डल जी शास्त्रीय प्रदर्शन या साहित्यिक आडम्बर की भाषा नहीं गढ़ते। वे गाँव, खेत, परिवार और समाज के बीच से उठी हुई भाषा अपनाते हैं। इस भाषा में मिट्टी की गन्ध है, पानी की लय है, खेत के श्रम-अनुभव हैं और घर-परिवार के संबोधन की आत्मीयता है। इसके साथ पंचायती व्यवस्था के प्रश्न, सामाजिक अंतर्विरोध और अंतर्मन का आत्मकथन उनकी काव्यभाषा को गहरा अर्थ प्रदान करते हैं। इसी कारण उनकी काव्यभाषा केवल अभिव्यक्ति का साधन नहीं रह जाती, बल्कि जीवन, समाज और संवेदना को एक सूत्र में जोड़ने वाला रचनात्मक आधार बन जाती है।

लोकभाषा उनकी कविता में मात्र स्थानीय रंग नहीं। स्थानीय रंग बाहरी सजावट हो सकता है। पर लोकभाषा जीवन से उठती हुई आवाज़ होती है। मण्डल जी के पद्य में जो शब्द आते हैं, वे शब्द केवल अर्थ नहीं देते। वे जीवन का पूरा परिवेश अपने साथ लेकर आते हैं। ‘माटि-पानि’, ‘चौर-पोखैर’, ‘धान-चास’, ‘गाम’, ‘माए-बेटी’, ‘भैया-मीत’, ‘जिनगी-मन’, ‘धार’ और ‘अगहन-माघ’ जैसे शब्द अपने साथ लोकजीवन का अनुभव, स्मृति और संवेदना लाते हैं। इसी कारण उनकी भाषा पढ़े जाने से अधिक सुने जाने वाली भाषा प्रतीत होती है, जिसे जनकंठ की भाषा भी कहा जा सकता है।

मण्डल जी की काव्यभाषा में कृत्रिम ऊँचाई नहीं दिखती। वे पाठक को आतंकित करने वाली विद्वत्ता से परहेज करते हैं। उनकी भाषा पाठक को अपने

निकट लाती है। उसमें घर-आँगन की सहजता है, पर वह सहजता सरलतावादी नहीं। क्योंकि मण्डल जी के साधारण शब्द गहरे अर्थ धारण करते हैं। 'पोखर' कहते ही जलाशय मात्र नहीं, पूरा सामुदायिक जीवन उभरता है। 'चौर' कहते ही भूगोल मात्र नहीं, किसान की ठिठुरते पानी में उतरती देह, फसल की आशा और श्रम की परीक्षा उभरती है। 'माँ' कहते ही मातृत्व का भाव मात्र नहीं, परिवार के श्रम, ममता और संस्कार का केंद्र उपस्थित होता है। मण्डल जी लोकशब्द को गहरा काव्य-बिंब बना देते हैं।

उनकी भाषा में ध्वन्यात्मकता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ध्वनि मात्र तुक या लय का मामला नहीं है; वह अनुभव की बनावट रचती है। 'धक्कम-धुक्कम' (धक्का-मुक्की), 'हँसना-रोना', 'रग्गड़-घस्स' (आपसी खींचातानी) और 'लटपट-खटपट' (अव्यवस्था तथा हलचल) जैसे शब्द-संयोजन लोकजीवन की गतिशीलता, संघर्ष और असंतुलन को अपनी ध्वनि-संरचना में समेट लेते हैं। ये शब्द हास्य, व्यथा और सामाजिक टकराव को भी सामने लाते हैं। इनका अर्थ केवल शब्दकोश से नहीं, बल्कि अनुभव की ध्वनि से खुलता है। गाँव के जीवन में उपस्थित धक्का-मुक्की, संघर्ष, आपसी खींचातानी, हँसी-रोदन और सामुदायिक हलचल का समूचा अनुभव मण्डल जी की काव्यभाषा में ध्वन्यात्मक रूप ग्रहण करता है।

आवृत्ति मण्डल जी के शिल्प का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। उनकी कविता में शब्द फिर आता है, पंक्ति फिर आती है, संबोधन फिर आता है। प्रश्न और बिंब भी बार-बार आते हैं। यह आवृत्ति यांत्रिक पुनरुक्ति नहीं। यह लोकगीत की लय, श्रम की ताल, मन के मंथन और जीवन के पुनरागमन का काव्यात्मक रूप है। किसान हर वर्ष बीज बोता है। मौसम अपने चक्र में चलता रहता है। दुःख फिर आता है, आशा फिर उठती है, और समाज के प्रश्न फिर सामने खड़े होते हैं। जीवन स्वयं आवृत्तिमय है। मण्डल जी इस जीवन-लय को पद्य के शिल्प में रूपान्तरित करते हैं।

लोकगीत की परंपरा में मुखड़ा, **लौटान**, पुकार और आवृत्ति भाव को गाढ़ा करते हैं। मण्डल जी के पद्य में भी आवृत्ति अर्थ को कमजोर नहीं करती। वह उसे अधिक तीव्र बनाती है। 'फेरो' जैसा शब्द जीवन-जिजीविषा का पूरा दर्शन

खोलता है, क्योंकि वह टूटन के बाद पुनः आरंभ का संकेत देता है। 'राति-दिन' की **लौटान** जीवन के द्वंद्व को स्थायी बनाती है। 'जेठ-माघ' की जोड़ी समय और मौसम की कठोर परीक्षा को स्मरणीय बनाती है। इस प्रकार आवृत्ति अर्थ का विस्तार नहीं, अर्थ की सघनता रचती है।

'भैया', 'मीत', 'मैया', 'बहिनी', 'दीदी', 'अहीं कहू' जैसे संबोधन कविता को सादे वक्तव्य की सीमा में बाँधकर नहीं रखते। ये संबोधन उसे बातचीत, संवाद और आत्मीय प्रश्न का रूप देते हैं। कवि पाठक से दूरी बनाकर नहीं बोलता। वह सामने बैठे मनुष्य से बात करता है। इन संबोधनों के कारण कविता में लोकसमाज की सामूहिक उपस्थिति बनती है। पाठक मात्र पढ़ने वाला नहीं रहता। वह संवाद का सहभागी बनता है।

प्रश्नवाचकता भी उनके शिल्प का प्रमुख अंग है। 'क्यों', 'कैसे', 'किसे कहें' और 'आप ही कहिए' जैसे प्रश्न कविता के भीतर विचार, प्रतिवाद और आत्मपरीक्षण की स्थिति निर्मित करते हैं। और ये प्रश्न उत्तर की प्रतीक्षा मात्र नहीं। ये समाज के विवेक को झकझोरते हैं। जब कवि पूछते हैं कि गाँव से लोग क्यों कटते हैं, बेटी बोझ क्यों बनती है, श्रम का मान क्यों नहीं, पोखर का मान क्या है, नज़र कहाँ बदली, तब कविता सामाजिक विवेक की खुली पंचायती बन जाती है। इस प्रश्नवाचक शैली में पंचायती की लोकधर्मिता है। समाज का प्रश्न समाज के बीच रखा जाता है।

मण्डल जी की भाषा में वाक्य-संरचना कई जगह गद्य के निकट रहती है, पर वह गद्यात्मक बोझ नहीं बनती। वह संवाद, टोक, प्रश्न, लय और ध्वनि द्वारा पद्यात्मक रूप ग्रहण करती है। उनकी कविता प्रायः कथा की तरह शुरू होती है, बातचीत की तरह बढ़ती है और गीत की तरह मन में रह जाती है। इस मिश्रित रूप के कारण उनका पद्य केवल गीतात्मक नहीं, और न मात्र कथात्मक। वह लोक-वाचन और लोक-गान के बीच की विशिष्ट संरचना बनाता है।

उनके भाषिक शिल्प में द्वन्द्वात्मक जोड़ियाँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। रात-दिन, साँझ-भोर, धूप-छाँह, जेठ-माघ, सुख-दुःख, जीवन-मृत्यु, हँसना-रोना, गाँव-परदेश, मिट्टी-पानी, श्रम-अभाव, आशा-निराशा, ये सभी जोड़ियाँ जीवन की द्वन्द्वात्मक प्रकृति को व्यक्त करती हैं। मण्डल जी जीवन को एकरेखीय नहीं

देखते। वे जानते हैं कि दुःख के भीतर आशा है, अँधेरे के बाद भोर है। श्रम के भीतर पीड़ा और गर्व दोनों हैं। गाँव में आत्मीयता और दरार दोनों हैं। इस द्वन्द्वात्मक शब्द-संरचना से मण्डल जी जीवन की जटिलता पकड़ते हैं।

लोकभाषा के प्रयोग का अर्थ यह नहीं कि उनकी भाषा असावधान है। उलटे, उसकी सहजता के भीतर गहरा अनुशासन है। शब्द-चयन जीवन-स्रोत से जुड़ा है। ध्वनि-प्रयोग भावानुकूल है। आवृत्ति भाव-विस्तार करती है। संबोधन पाठक का स्थान निर्धारित करता है। प्रश्न काव्य की विचार-दिशा खोलता है। मिथिला के कृषिजन्य शब्द काव्य को स्थानीय धरातल देते हैं। इसी कारण मण्डल जी की भाषा सहज होते हुए भी संरचनात्मक रूप से सघन है।

उनकी काव्यभाषा में लोक-व्यंग्य और आत्मव्यंग्य का स्वर भी मिलता है। मण्डल जी समाज की विकृति पर सीधा प्रहार करते हैं, पर कई बार वह प्रहार लोक-हँसी के माध्यम से अधिक प्रभावी बनता है। लोकजीवन में हँसी मात्र मनोरंजन नहीं। वह आलोचना, आत्मरक्षा और सत्य का खुलासा करने का माध्यम भी है। मण्डल जी के पद्य में हँसना-रोना, टोका-टोकी, उलाहना और व्यंग्य समाज के असंतुलन को सामने लाते हैं। इस भाषा में करुणा है, पर करुणा अकर्मण्य नहीं। वह विचार जगाती है।

मण्डल जी की भाषा में कृषि-जल जीवन की शब्दावली विशेष महत्त्व रखती है। चास-बीज, हल-कुदाल, खेत-पथार, धनकटनी, पानी-मेड़, अगहन-पाला, बाढ़-सूखा, पशुधन और गोधन किसान के जीवन-संसार के प्रतिनिधि शब्द हैं। इन शब्दों के बिना मण्डल जी की कविता की अन्तःभूमि समझना कठिन है। ये शब्द केवल संदर्भ नहीं देते। वे कविता में श्रम की देह, ऋतु का दबाव, अन्न की चिंता और ग्राम्य सामाजिक संरचना उपस्थित करते हैं। भाषिक स्तर पर किसान और श्रमशील मनुष्य की प्रतिष्ठा इसी से निर्मित होती है।

परिवार के संबोधन भी उनकी भाषा को आत्मीय बनाते हैं। माँ, बेटी, बहन, दीदी, बहू, सास, पत्नी, भैया, मीत, ये सभी संबंधसूचक शब्द कविता में भावुकता मात्र नहीं भरते। वे समाज की संरचना भी खोलते हैं। परिवार की भाषा द्वारा मण्डल जी समाज के गहरे प्रश्न उठाते हैं। माँ कहते ही श्रम का बोध जागता है। बेटी कहते ही समाज की दृष्टि सामने आती है। बहन कहते ही असुरक्षा और स्नेह,

और बहू कहते ही परिवार का संरचनात्मक तनाव उभरता है। इस प्रकार मण्डल जी के साहित्य में संबोधन बिंब बनता है।

उनके पद्य में ध्वनि और अर्थ कई स्थानों पर एक-दूसरे को बल देते हैं। श्रम की थकान व्यक्त करने वाले शब्दों की ध्वनि में भारीपन उभरता है। टकराव का बोध कराने वाले शब्दों के उच्चारण में ध्वन्यात्मक घर्षण सुनाई देता है। पुकार बनकर आने वाले शब्दों की लय में स्वाभाविक खिंचाव होता है। जिजीविषा व्यक्त करने वाले शब्दों की आवृत्ति में धड़कन अनुभव होती है। इसी कारण मण्डल जी की कविता आँख से पढ़ने के साथ कान से सुनने की भी माँग करती है। उसका ध्वनि-गठन अर्थ का सक्रिय सहचर है।

मण्डल जी की भाषा में लोक की तात्कालिकता भी है। वे जटिल अनुभूति को साधारण वाक्य में कह देते हैं, पर वह साधारण वाक्य सोचने के लिए विवश करता है। यह शैली लोकबुद्धि से उपजी है। लोकजीवन गहरी बात सरल वाक्य में कहता है। कहावत, टोक, प्रश्न, संबोधन, व्यंग्य और संकेत, ये सब मिलकर सामाजिक दर्शन रचते हैं। मण्डल जी इस लोकबुद्धि को काव्य-शक्ति बनाते हैं। उनकी भाषा में विद्वत्ता का प्रदर्शन नहीं, अनुभव की प्रामाणिकता है।

आवृत्तिमय शिल्प का एक पक्ष मन-मथन भी है। मन एक ही प्रश्न पर बार-बार ठहरता है। समाज की एक ही दरार बार-बार सामने आती है। किसान की एक ही चिंता हर मौसम में नया रूप धारण करती है। परिवार का एक ही तनाव नयी पीढ़ी में फिर उभरता है। कविता में यह आवर्तन इसी मन-मथन का रूप है। 'मन मथन' का शीर्षकीय संकेत मण्डल जी की व्यापक काव्य-प्रवृत्ति से जुड़ता है। मन मथता है, प्रश्न उठता है, ध्वनि दोहराती है, अर्थ गाढ़ा होता है। इस शिल्प में विचार गीतात्मक रूप पाता है।

लोकभाषा के प्रयोग से मण्डल जी की कविता में लोकतान्त्रिकता भी आती है। भाषा जब लोक की होती है, तब साहित्य की ऊँची देहरी टूटती है। किसान, मजदूर, स्त्री, गरीब गृहस्थ और गाँव के पाठक, सब कविता में अपनी आवाज़ सुन सकते हैं। मण्डल जी साहित्य को लोकजीवन से अलग विशेषाधिकार की वस्तु नहीं मानते। वे लोक की भाषा में लोक के प्रश्न उठाते हैं। इस अर्थ में उनकी भाषा सामाजिक न्याय का सांस्कृतिक रूप भी है। जिसका

अनुभव उपेक्षित था, उसकी भाषा कविता में प्रतिष्ठा पाती है।

मण्डल जी की भाषा में 'अकास' और 'गंगा' जैसे विशाल बिंब भी लोकधर्मी धरातल पर आते हैं। अकास ऊर्ध्वता, विस्तार, स्वप्न और अनन्त संभावना का संकेत है। गंगा प्रवाह, पवित्रता, लोक-स्मृति और सांस्कृतिक निरंतरता का संकेत है। पर मण्डल जी की कविता में ये बिंब लोकजीवन से कटते नहीं। क्योंकि अकास के नीचे खेत है। गंगा के साथ गाँव का स्नान-संस्कार है। पानी के साथ किसान का श्रम है। ऊर्ध्व बिंब धरती से जुड़ा रहता है। इस भाषिक संतुलन से कविता में स्थानीयता और व्यापकता एक साथ बनती है।

उनकी काव्यभाषा में भावुकता और विचार का संतुलन भी स्पष्ट दिखाई देता है। लोकभाषा में भाव-स्पर्श सहज रहता है, पर मण्डल जी उसे केवल करुणा, स्मृति या आत्मीयता की सीमा में नहीं रोकते। उसी भाषा से वे समाज पर प्रश्न उठाते हैं, श्रम का मान स्थापित करते हैं और पाखंड का आवरण खोलते हैं। उसी भाषा में वे आत्ममंथन करते हैं और मृत्यु-बोध को भी अभिव्यक्ति देते हैं। इसी कारण उनकी काव्यभाषा संवेदना और विचार का संयुक्त माध्यम बन उठती है। यह भाषा पाठक के मन को छूती है, पर उसके साथ सोचने का विवेक भी जगाती है।

लोकभाषा, ध्वनि और आवृत्ति मिलकर मण्डल जी की काव्यधारा में एक विशिष्ट काव्य-स्वर निर्मित करते हैं। यह स्वर शास्त्रीय गाम्भीर्य के दबाव में दबता नहीं, और सामान्य बातचीत में बिखरता भी नहीं। यह लोकजीवन के गहरे अनुभव को काव्यात्मक रूप में संगठित करता है। उसमें गीत की लय है, कथा का प्रसंग है और पंचायती का प्रश्न है। इसके साथ किसान की श्रम-लय, परिवार का संबोधन, समाज का प्रतिरोध और आत्ममंथन की गहराई भी है। इसी कारण उनकी काव्यधारा लोकधर्मी होते हुए भी गंभीर आलोचनात्मक अर्थ ग्रहण करती है।

इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि मण्डल जी की रचना का झुकाव लोकभाषा, ध्वनि और आवृत्तिमय शिल्प की ओर अत्यंत सशक्त रूप से उन्मुख है। उनकी भाषा लोकजीवन के अनुभव से बनी है। ध्वनि श्रम, संघर्ष, हँसी, करुणा और संवाद की देह धारण करती है। आवृत्ति जीवन के आवर्ती प्रश्नों को

सघन बनाती है। संबोधन कविता को सामूहिक संवाद बनाता है। प्रश्न विवेक जगाते हैं। कृषिजन्य शब्द धरती से जोड़ते हैं, और पारिवारिक शब्द संवेदना को गहरा करते हैं। इस उत्कृष्ट भाषिक संरचना के कारण मण्डल जी की कविता सजावटी पद्य नहीं। वह लोकजीवन के भीतर से बोलता हुआ सजीव काव्य-स्वर बनती है।

15. प्रतीक-संसार और बिंब-योजना: जगदीश प्रसाद मण्डल जी की काव्यधारा में प्रतीक और बिंब बाहरी सजावट के रूप में नहीं आते। वे उनके जीवनानुभव, लोक-संवेदना, कृषिजन्य संस्कार, सामाजिक दृष्टि और नैतिक चिंता के भीतर से उपजते हैं। उनकी कविता में मिट्टी-पानी, कृषि-जीवन और जल-धरातल, धान-बीज, पेड़-फूल, रात-दिन, जेठ-माघ, धार-सरिता, गंगा, कामधेनु, अकास, मन, घाट-घर, ग्राम्य परिवेश, परदेश और सामाजिक अवरोध जैसे संकेत बार-बार आते हैं। ये मात्र शब्द नहीं, बल्कि जीवन के व्यापक अर्थ-क्षेत्रों को खोलने वाले प्रतीक हैं। इनकी विशेषता यह है कि स्थानीय होते हुए भी ये अपनी भौगोलिक सीमा में बँधे नहीं रहते। वे मिथिला की धरती से उठते हैं, पर व्यापक मानवीय अर्थ ग्रहण करते हैं।

मण्डल जी के प्रतीक-संसार की पहली विशेषता उसका लोकजीवन से सीधा संबंध है। वे जटिल, कृत्रिम, दुर्बोध या बाहर से लाये गये प्रतीक नहीं चुनते। जो वस्तु गाँव के जीवन में प्रतिदिन देखी-सुनी, छुई-बरती और जीयी जाती है, वही वस्तु उनकी कविता में प्रतीक बन उठती है। पोखर गाँव का जलस्रोत है, पर कविता में वह सामुदायिक जीवन के रस, स्मृति और सूखती संवेदना का प्रतीक बनता है। चौर भूगोल है, पर पद्य में वह किसान की परीक्षा, जल-संकट और श्रम के धैर्य का प्रतीक बनता है। मिट्टी धरती है, पर वह जन्म, अन्न, श्रम, स्मृति और पहचान का प्रतीक बनती है। इस प्रकार मण्डल जी प्रतीक को लोकवस्तु से उठाकर जीवन-दर्शन तक पहुँचाते हैं।

मिट्टी मण्डल जी के प्रतीक-संसार का मूल आधार है। मिट्टी मात्र खेत का पदार्थ नहीं। वह मनुष्य की जड़, जन्मभूमि, श्रम का क्षेत्र, अन्न की संभावना और लोक-संस्कार का धरातल है। मिट्टी से कटना जीवन के मूल से कटना है। 'माटिक फूल' जैसे संकेत इस बात को सघन करते हैं कि सौन्दर्य और जीवन का प्रस्फुटन

धरती से होता है। 'सतबेध' की 'परता माटि' निष्क्रियता, उपेक्षा, बंजर मानसिकता और श्रमहीन जीवन का प्रश्न खोलती है। परती मिट्टी केवल खेत की दशा नहीं। वह मनुष्य और समाज की निष्क्रिय चेतना का बिंब भी बन जाती है।

पानी उनकी कविता में जीवन और संकट, दोनों का प्रतीक है। पानी खेत को जीवन देता है। पोखर का भरा रहना गाँव की सामुदायिकता बचाता है। धार जीवन को प्रवाह देती है। गंगा सांस्कृतिक स्मृति और पवित्रता का बोध कराती है। पर पानी असंतुलित हुआ तो बाढ़, और अभाव हुआ तो सूखा। इस दोहरे अर्थ के कारण पानी मण्डल जी की कविता में अत्यंत प्रभावी प्रतीक बनता है। वह मात्र तरलता या पवित्रता का बिंब नहीं। वह जीवन की आवश्यक शर्त, किसान की आशा, प्रकृति की मार और समाज की उत्तरदायित्व-बोध का संयुक्त प्रतीक है।

पोखर का बिंब मण्डल जी की काव्य-दृष्टि का अत्यंत महत्त्वपूर्ण केंद्र है। 'सुखाएल पोखरिक जाइठ' शीर्षक स्वयं एक दीर्घ प्रतीकात्मक संरचना है। सूखा पोखर आँख को केवल सूखा जलाशय नहीं दिखाता। वह गाँव की घटती सामुदायिकता, पर्यावरणीय उपेक्षा, स्मृति में बची जल-संस्कृति, जीवन-रस की कमी और सामूहिक संवेदना के क्षय का संकेत देता है। पोखर की जाठ उस सूखे जीवन का अवशेष है, जिसे देखकर पुराना जल, पुराना जीवन और पुरानी सामूहिकता याद आती है। इस प्रतीक में अतीत, वर्तमान और भविष्य की चिंता एक साथ जुड़ती है।

चौर मण्डल जी के काव्य-संसार का विशिष्ट मिथिलाई प्रतीक है। चौर में पानी है, धान है, ठंड है, कीचड़ है। उसमें श्रम, जोखिम और किसान का धैर्य भी है। 'रहसा चौरी' में चौर भौगोलिक यथार्थ होते हुए भी काव्य का गहरा बिंब बनता है। चौर किसान की नियति और जिजीविषा का खुला मैदान है। वह उपज देता है, पर परीक्षा भी लेता है। वह अन्न की आशा है, पर पानी में उतरती देह की पीड़ा भी। इस प्रकार चौर अन्न, श्रम, जोखिम, धैर्य और मिथिला के कृषिजन्य जीवन का संयुक्त प्रतीक बन उठता है।

धान और बीज उनकी कविता में उत्पादन के साधारण संकेत नहीं। बीज भविष्य की संभावना है। किसान बीज संभालता है, क्योंकि बीज में अगले ऋतु,

अगले अन्न, अगले जीवन और परिवार की आशा छिपी है। धान श्रम का फल है, पर वह मात्र अन्न नहीं। वह खेत, पानी, ऋतु, पसीना, प्रतीक्षा और परिवार के पेट का सार है। इसी कारण धान का बिंब किसान के जीवन और समाज के जीवन के परस्पर संबंध को प्रत्यक्ष रूप से उजागर करता है।

अन्न उपजाने वाला हाथ यदि उपेक्षित है, तो समाज की नैतिकता प्रश्न में है। धान का प्रतीक इस न्याय-बोध को जगाता है।

पेड़ और फूल मण्डल जी की बिंब-योजना में जीवन की जैविकता और परिवर्तनशीलता को मूर्त करने वाले प्रमुख बिंब हैं। पेड़ जड़ रखता है, ऊपर बढ़ता है, मौसम सहता है, पत्ते छोड़ता है और फिर हरियाता है। पेड़ का रंग बदलता है, पर उसकी जड़ मिट्टी में रहती है। यह बिंब मनुष्य और समाज, दोनों के अर्थ खोलता है। फूल कोमलता और सौन्दर्य का प्रतीक है, पर मण्डल जी की कविता में फूल मिट्टी से अलग नहीं। 'माटिक फूल' इस बात का प्रतीक है कि सौन्दर्य का आधार श्रम, धरती और जीवन की कठोरता में है। इस प्रतीक में कोमलता और कठोरता एक साथ जुड़ती है।

रात-दिन, साँझ-भोर, धूप-छाँह, जेठ-माघ जैसे द्वन्द्वात्मक बिंब मण्डल जी की काव्य-संरचना में अत्यंत प्रभावी हैं। ये सब केवल समय के संकेत नहीं। रात- भय, थकान, आत्ममंथन और अँधेरे का अनुभव है। दिन- श्रम, जिम्मेदारी और खुले जीवन का प्रतीक है। साँझ संक्रमण, थकान और प्रतीक्षा का समय है। भोर नये आरंभ का संकेत है। धूप श्रम का ताप है, और छाँह राहत का अनुभव। जेठ देह की दाह है, माघ हाड़ सिहराती परीक्षा। इन द्वन्द्वात्मक बिम्बों से मण्डल जी जीवन को एकरेखीय नहीं दिखाते। वे उसे संघर्षमय और परिवर्तनशील रूप में सामने लाते हैं।

धार, सरिता और गंगा प्रवाह के बिंब बनते हैं। 'सरिता' में बहाव जीवन की गति को सूचित करता है। धार के बीच फँसना जीवन का संकट भी बन सकता है। धार के साथ चलना जीवन की अनिवार्य गति भी है। गंगा सांस्कृतिक स्मृति, लोकविश्वास, स्नान-संस्कार और शुद्धि का बिंब है। पर मण्डल जी उसे मात्र धार्मिक प्रतीक तक सीमित नहीं रखते। गंगा-धार, पानी-पोखर और चौर के जल-प्रतीक मिलकर मिथिला की जीवन-व्यवस्था बनाते हैं। इन जल-बिम्बों में

जीवन, अस्थिरता, संकट, पवित्रता और सामुदायिकता की एक साथ उपस्थिति रहती है।

'कामधेनु' का प्रतीक मण्डल जी के लोकमूलक अर्थ-निर्माण का विशेष उदाहरण है। कामधेनु परंपरागत रूप से इच्छा-पूर्ति और समृद्धि का प्रतीक है। पर मण्डल जी की काव्य-चेतना में यह प्रतीक चमत्कार से हटकर श्रम, सेवा, पोषण, पशुधन, गृहस्थ जीवन और आत्मनिर्भरता से जुड़ जाता है। गाय, दूध, गोबर, खेत-पशुधन, गृहस्थी, सेवा और चास-बास मिलकर कामधेनु को लोक-अर्थ देते हैं। इस रूप में मिथकीय प्रतीक लोक-आर्थिक और नैतिक प्रतीक में बदलता है। यह मण्डल जी के प्रतीक-प्रयोग की विशिष्टता है।

'अकास गंगा' में अकास और गंगा, दोनों बिम्बों की संयुक्तता विशेष ध्यान माँगती है। अकास विस्तार, ऊर्ध्वता, स्वप्न, अनन्त संभावना और खुलेपन का प्रतीक है। गंगा प्रवाह, पवित्रता, सांस्कृतिक स्मृति, लोकजीवन और जलधारा का प्रतीक है। दोनों मिलकर ऊर्ध्वता और धरती के प्रवाह का संयुक्त अर्थ रचते हैं। स्वप्न और जीवन, पवित्रता और गति, ये सभी अर्थ भी उस संयुक्तता में खुलते हैं। पर मण्डल जी का अकास धरती से कटता नहीं। उस अकास के नीचे खेत, गाँव, मनुष्य और समाज उपस्थित रहते हैं। इसी कारण हम यह माने कि ऊँचा प्रतीक भी लोकजीवन में रोपा हुआ रहता है।

मन मण्डल जी की काव्यधारा में अन्तःसंघर्ष का प्रतीक है। 'मन मथन' शीर्षक स्वयं बताता है कि कविता का एक क्षेत्र मन के भीतर घटित होता है। पर यह मन निजी भावुकता की सीमा में बँधा नहीं है। यह समाज के प्रश्न, आत्म-छल, विवेक, स्मृति, पछतावा, आशा और आत्मालोचना का विस्तृत क्षेत्र है। मन का मंथन समाज के मंथन से अलग नहीं। जो समाज में दरार है, उसका प्रतिबिंब मन में भी है। इस रूप में मन प्रतीक बनकर आंतरिक और सामाजिक, दोनों स्तरों को जोड़ता है।

घाट मण्डल जी के प्रतीक-संसार में जीवन-मृत्यु और सामुदायिक संवेदना का बिंब है। 'मरल घाट' मात्र मृत स्थान का संकेत नहीं। घाट वह जगह है जहाँ समाज मृत्यु से सामना करता है। वहाँ स्मृति बनती है और जीवन की क्षणभंगुरता स्वीकार होती है। यदि घाट 'मरा' है, तो अर्थ यह कि समाज की

संवेदना, स्मृति और सामूहिक नैतिकता क्षीण हो रही है। इस प्रतीक में मृत्यु-बोध और सामाजिक आलोचना साथ-साथ एक-दूसरे से जुड़ते हैं। मण्डल जी मृत्यु को दार्शनिक अमूर्तन नहीं बनाते। वे उसे लोकजीवन के सामूहिक अनुभव से जोड़ते हैं।

घर और गाँव भी मण्डल जी की बिंब-योजना के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। घर उनकी कविता में केवल रहने का स्थान नहीं है। वह परिवार की आत्मीयता, ममता, श्रम, स्त्री के अदृश्य दायित्व, पीढ़ी की स्मृति और नैतिक जीवन का पहला धरातल है। घर के भीतर संबंध बनते हैं, जिम्मेदारी निभायी जाती है, दुःख-सुख बाँटा जाता है और मनुष्य की नैतिकता व्यवहार में परखी जाती है। इस कारण घर का बिंब निजी जीवन का सीमित संकेत नहीं रहता; वह परिवार और समाज की भीतरी स्थिति दिखाता है।

गाँव भी मात्र भूगोल नहीं है। वह मिट्टी-पानी, खेत-खरिहान, लोक-संस्कार, भाषा, श्रम, जातीय-सामुदायिक संबंध और सामूहिक जीवन का व्यापक प्रतीक है। गाँव में मनुष्य अकेला नहीं रहता; वह समाज के साथ, परंपरा के साथ, संघर्ष के साथ और लोक-विवेक के साथ जुड़ा रहता है। घर ढहा तो परिवार का संकट सामने आता है, और गाँव ढहा तो पूरे लोकजीवन का संकट स्पष्ट होता है। इस तरह घर और गाँव के बिंब एक-दूसरे को सहारा देते हैं। इसी कारण मण्डल जी की कविता में निजी जीवन और सामाजिक संसार अलग-अलग नहीं, बल्कि एक ही लोकधर्मी जीवन-दृष्टि के परस्पर जुड़े पक्ष बनकर सामने आते हैं।

परदेश मण्डल जी की काव्यधारा में दूरी का मात्र बिंब नहीं। परदेश मिट्टी-पानी से कटने की पीड़ा, चास-बास की टूटन, परिवार का विखंडन, श्रम का विस्थापन और ग्रामजीवन के असंतुलन का प्रतीक है। परदेशी मनुष्य रोजगार खोजता है, पर उसके भीतर गाँव की स्मृति बची रहती है। माँ-बाप का घर, खेत की गन्ध और भाषा की तान भी उसके भीतर रहती है। इस बिंब में आर्थिक विवशता और सांस्कृतिक विस्थापन एक साथ उपस्थित हैं। मण्डल जी परदेश के अनुभव को आकर्षक प्रवास नहीं बनाते। वे उसे लोकजीवन के संकट के रूप में देखते हैं।

समाज का 'बान्ह-छेक' मण्डल जी के सामाजिक प्रतीक-संसार का अत्यंत तीक्ष्ण बिंब है। 'बान्ह' बाँधने वाली संरचना और 'छेक' मनुष्य की राह रोकने वाले अवरोध का बोध कराता है। समाज जब जाति, धर्म, धन, प्रतिष्ठा, उम्र, लिंग, पाखंड या विवेकहीन परंपरा के नाम पर मनुष्य की सहज गति रोकता है, तब सामाजिक अवरोध और मानसिक बन्दिशें जन्म लेती हैं। यह बिंब मूर्त और अमूर्त दोनों स्तरों पर सक्रिय है। ये अवरोध हमेशा दिखाई नहीं देते, किंतु मनुष्य के जीवन पर उनका प्रभाव स्पष्ट पड़ता है। इस प्रतीक के माध्यम से मण्डल जी समाज की अदृश्य बन्दिशों को दृश्य बना देते हैं।

परती मिट्टी, सूखा पोखर, मरा घाट, ढहा गाँव, 'बान्ह-छेक' और घटता दिन मण्डल जी की कविता में क्षय और संकट के प्रतीक हैं। किंतु इन प्रतीकों में केवल निराशा नहीं है। परती मिट्टी फिर जोती जा सकती है। सूखा पोखर फिर पानी की माँग करता है। मरा घाट समाज की सुप्त संवेदना को जगाने वाली चेतावनी बनता है। ढहा गाँव पुनर्निर्माण का प्रश्न उठाता है। 'बान्ह-छेक' समाज में विद्यमान रोक-टोक और विभाजन को चिह्नित करता है तथा इन अवरोधों को दूर करने की आवश्यकता भी सामने लाता है। घटता दिन समय की कमी का बोध कराकर मनुष्य को तत्पर बनाता है। इन प्रतीकों की विशेषता यह है कि वे संकट को सामने लाते हैं, किंतु पुनर्निर्माण की संभावना को समाप्त नहीं करते।

मण्डल जी की बिंब-योजना में दृश्य, श्रव्य, स्पर्शगत और देहगत अनुभव एक साथ आते हैं। चौर का पानी देखा भी जाता है और छुआ भी। माघ की ठंड देह में उतरती है। धूप चमड़ी पर पड़ती है। धान की बाली आँखों से देखी और हाथों से छुई जाती है। धक्का-मुक्की की आहट और आपसी नोक-झोंक के स्वर सुनाई देते हैं। इस इन्द्रिय-बोध के कारण उनकी कविता ठोस और सजीव बनती है। प्रतीक अमूर्त नहीं रह जाता; उसे मानो देह मिल जाती है। पाठक प्रतीक को केवल बौद्धिक स्तर पर नहीं समझता, बल्कि संवेदनात्मक स्तर पर अनुभव भी करता है।

उनके बिम्बों में श्रम की देह निरंतर उपस्थित है। खेत जोतने वाली देह, पानी में उतरती देह, घर संभालती स्त्री की शरीर और धूप में थके मजदूर की शरीर कविता में आती है। भूख और श्रम से संघर्ष करती किसान की देह भी वहाँ

उपस्थित है। ये सब बिंब कविता को शरीर देते हैं। यह देह सौन्दर्य-प्रदर्शन की वस्तु नहीं। यह श्रम और जीवन का साक्ष्य है। इन देहगत बिम्बों से मण्डल जी श्रमशील मनुष्य के यथार्थ को सम्मान देते हैं।

मण्डल जी के प्रतीक-संसार में शीर्षकों की भूमिका विशेष है। 'इन्द्रधनुषी अकास', 'राति-दिन', 'तीन जेठ एगारहम माघ', 'सुखाएल पोखरिक जाइठ', 'सरिता', 'सतबेध', 'चुनौती', 'रहसा चौरी', 'कामधेनु', 'मन मथन', 'अकास गंगा', इन शीर्षकों में स्वयं काव्य-दृष्टि का संकेत है। ये शीर्षक मात्र पुस्तक के नाम नहीं। वे संपूर्ण भावभूमि खोलते हैं। कहीं रंग और विस्तार है, कहीं समय का द्वंद्व। कहीं ऋतु की कठोरता है, कहीं जल-संस्कृति का क्षय। कहीं प्रवाह है, कहीं सत्य का भेदन। कहीं जीवन-संघर्ष है, कहीं चौर का लोकजीवन। कहीं लोक-समृद्धि का श्रममूलक अर्थ है, कहीं आंतरिक मंथन। कहीं अकास का विस्तार है, कहीं गंगाजल-प्रवाह का संयुक्त अर्थ।

रचनाओं के शीर्षक भी बिम्बात्मक संकेत देते हैं। 'फेरो हम' जीवन-जिजीविषा का सूत्र है। 'समाजक बान्ह-छेक' सामाजिक अवरोध का बिंब है। 'नजैर कहाँ बदलल' दृष्टि-संकट का प्रश्न है। 'अपने मन ठकैए' आत्मभ्रम का प्रतीक है। 'बेटी किए' स्त्री-संबंधी सामाजिक विवेक का प्रश्न है। 'ओइ पोखरिक मानियेँ की?' लोक-संरचना के अवमूल्यन का संकेत है। 'मरल घाट' संवेदनाहीन समाज का बिंब है। इन शीर्षकों में कविता आरंभ होने से पहले ही अर्थ-क्षेत्र खुल जाता है।

मण्डल जी के प्रतीक-संसार की एक विशेषता उसकी गतिशीलता भी है। उनके यहाँ कोई प्रतीक एक ही अर्थ में स्थिर नहीं रहता। मिट्टी जन्मभूमि भी है और खेत भी। वह परिश्रम का आधार भी है और परती चेतना का संकेत भी। पानी जीवन भी है, बाढ़ की मार भी और सूखे की पीड़ा भी। उसी तरह चौर अन्न की आशा भी है और किसान की परीक्षा भी। घर ममता का आश्रय भी है और कलह का स्थल भी। गाँव स्मृति भी है और सामाजिक दरारों का साक्षी भी। इसी बहुअर्थकता से प्रतीक जीवंत बनते हैं। वे पाठक को कोई एकरेखीय अर्थ नहीं देते, बल्कि उसे सोचने की जगह प्रदान करते हैं।

इन प्रतीकों के मूल में मण्डल जी की जीवन-दृष्टि है। उनका दृष्टि व्यापक

है। वे वस्तु को उसके बाहरी रूप तक सीमित नहीं देखते। वे जीवन की संबंध-व्यवस्था में उसके स्थान और अर्थ की पहचान करते हैं। इस कारण पोखर उनकी कविता में केवल पानी का स्रोत नहीं रहता। वह समाज के सामूहिक जीवन का प्रतीक बनकर आता है। खेत मात्र जमीन नहीं, श्रम है। बेटी मात्र परिवार की सदस्य नहीं, समाज की दृष्टि की परीक्षा है। माघ मात्र महीना नहीं, देह का संघर्ष है। गाँव मात्र निवास नहीं, लोकजीवन की समग्रता है। इस दृष्टि से उनकी बिंब-योजना संबंधात्मक है। उसमें कोई बिंब अकेला नहीं रहता; पोखर खेत से, खेत श्रम से, श्रम परिवार से, परिवार समाज से और समाज लोक-संस्कार से जुड़ जाता है। इस तरह प्रत्येक बिंब दूसरे बिंब से अर्थ ग्रहण करता है और अपना अर्थ उसे देता भी है। अंततः ये सभी बिंब मिलकर मण्डल जी की कविता में जीवन का ऐसा संबंध-जाल रचते हैं, जिसमें मिट्टी, पानी, श्रम, परिवार, समाज और मनुष्य की नैतिक चेतना एक साथ उपस्थित रहती है।

मण्डल जी का प्रतीक-संसार लोकमूलक होते हुए भी दार्शनिक गहराई प्राप्त करता है। वह प्रत्यक्ष जीवन से उठता है, पर मनुष्य, समाज, समय, मृत्यु, न्याय, स्मृति, श्रम और पुनर्जन्म के प्रश्न भी खोलता है। इसी कारण उनकी कविता में दर्शन कठिन शब्दावली में नहीं, लोक-बिंब में व्यक्त होता है। सूखा पोखर दर्शन कहता है। परती मिट्टी चेतना पूछती है। मरा घाट समाज का मृत्यु-बोध जगाता है। 'फेरो हम' जीवन का नया आरंभ बताता है। इस रूप में लोक-बिंब जीवन-दर्शन का माध्यम बनता है।

इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि मण्डल जी की काव्यधारा का प्रतीक-संसार और बिंब-योजना अत्यंत सघन, लोक-संबद्ध और जीवनधर्मी है। उनके प्रतीक बाहर से आरोपित नहीं हैं; वे मिथिला की मिट्टी-पानी, कृषिजन्य जीवन, परिवार, समाज, श्रम, समय और लोक-संस्कारों के भीतर से उपजे हैं। मिट्टी-पानी, खेत-पथार और पोखर-धार जैसे धरती से जुड़े बिंब; धान-बीज, पेड़-फूल और कामधेनु जैसे जीवन-पोषक प्रतीक; रात-दिन, जेठ-माघ और घटता दिन जैसे समय-बोधक संकेत; तथा घर, गाँव, घाट और 'बान्ह-छेक' जैसे सामाजिक बिंब मिलकर उनकी काव्यधारा का विशिष्ट प्रतीक-लोक रचते हैं। इन प्रतीकों के माध्यम से मण्डल जी जीवन के कठोर यथार्थ, सामाजिक दरारों, श्रम की

गरिमा, मृत्यु-बोध, जिजीविषा और नैतिक विवेक को काव्यात्मक रूप देते हैं। इसी कारण उनकी बिंब-योजना मैथिली काव्यधारा में लोक-यथार्थ और जीवन-दर्शन के सशक्त समन्वय के रूप में दिखाई देती है।

16. काव्य-स्वर, संबोधन और संवादधर्मी संरचना: जगदीश प्रसाद मण्डल जी की काव्यधारा की एक प्रमुख विशेषता उसका काव्य-स्वर है। यह स्वर एकान्त में अपने-आप से बुदबुदाते व्यक्ति का स्वर नहीं। यह समाज के बीच से उठा हुआ स्वर है। यह लोक को संबोधित करता है, प्रश्न करता है, टोकता है, समझाता है, दुःख सुनता है और मनुष्य में निहित विवेक को जगाता है। मण्डल जी अनेक स्थानों पर पाठक से सीधा संवाद करते हैं। वे केवल एकतरफा बात नहीं कहते; वे पाठक और समाज के साथ जीवित संवाद रचते हैं। वे मात्र भाव व्यक्त नहीं करते। वे सामने बैठे मनुष्य से प्रश्न करते हैं। इसी कारण उनके काव्य-संसार में काव्य-स्वर संवादधर्मी, संबोधनमूलक और लोक-सम्बद्ध बनता है।

मण्डल जी के काव्य-स्वर का मूल धरातल लोकजीवन है। लोकजीवन में विचार मात्र पुस्तक में नहीं बनता। वह ओसारे पर, खेत की मेड़ पर, पोखर के किनारे, पंचायती में, परिवार के भीतर, समाज की बैठक में, हाट-बाजार में और दैनंदिन बातचीत में बनता है। लोक-मनुष्य बात करते-करते सोचता है। वह सवाल उठाता है, उलाहना देता है, उदाहरण देता है, पुरानी बात याद करता है और सामूहिक विवेक निर्मित करता है। मण्डल जी की कविता इस लोक-संवाद की परंपरा से जुड़ी है। इसलिए उनके पद्य को पढ़ते समय प्रायः ऐसा लगता है कि कवि पुस्तक के पन्ने से नहीं, जीवित समाज के बीच से बोल रहा है।

संबोधन उनकी काव्य-संरचना का अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। 'भैया', 'मीत', 'मैया', 'बहिनी', 'दीदी', 'अहीं कहू', 'हे बहिना' जैसे संबोधन मात्र लोक-स्वाद के लिए नहीं। ये संबोधन कविता और पाठक के बीच संबंध बनाते हैं। कवि जो बात कहता है, वह निराकार जनसमूह को नहीं, एक जीवित मनुष्य को संबोधित होती है। संबोधन के कारण कविता में आत्मीयता, निकटता और सहभागिता आती है। पाठक सुनने वाला मात्र नहीं रहता। वह संवाद का सहभागी बनता है। इस शैली से काव्य का लोकतान्त्रिक चरित्र निर्मित होता है।

'भैया' जैसा संबोधन मण्डल जी के पद्य में बहुत अर्थ खोलता है। यहाँ भैया मात्र पारिवारिक संबोधन नहीं है। वह समाज का सामान्य मनुष्य, सहचर, सहभागी, श्रोता और संभावित उत्तरदाता बन उठता है। कवि जब 'भैया' कहते हैं, तब वे उपदेशक के ऊँचे स्थान पर नहीं, बराबरी के धरातल पर आते हैं। लोक-संवाद में भैया कहना आत्मीय विश्वास का संकेत है। इस संबोधन में आरोप की कठोरता कम है। आत्मीय चेतावनी की शक्ति अधिक है। समाज से प्रश्न करने की यह शैली मण्डल जी के काव्य-स्वर को विशिष्ट बनाती है।

'मीत' संबोधन उनकी कविता में आत्मीय निकटता का क्षेत्र खोलता है। मीत का अर्थ मित्र, अपना लोक, अपने मन का संगी और अपने अनुभव का सहभागी है। कवि जब मीत से बात करता है, तब कविता निजी भावुकता नहीं बनती। वह सामूहिक अनुभव का आत्मीय कथन बनती है। दुःख, संघर्ष, श्रम, समय, समाज की दरार और जीवन की कठिनाई जैसी बात मीत से कहना सहज होता है। मण्डल जी इस आत्मीय संवाद द्वारा गंभीर बात को मानवीय और ग्रहणीय बनाते हैं।

स्त्री-संबंधी संबोधन उनके काव्य-स्वर में विशेष संवेदनात्मक विस्तार लाते हैं। 'मैया', 'माए', 'बहिनी', 'दीदी', 'बेटी', 'पुतोहु' जैसे शब्द कविता में संबंध, करुणा, श्रम, संस्कार, असुरक्षा और नैतिक प्रश्न की अनेक परतें खोलते हैं। जब कवि बहन को संबोधित करते हैं, तब वे मात्र एक स्त्री का जीवन नहीं देखते। वे पूरे समाज की स्त्री-दृष्टि का परीक्षण करते हैं। जब माँ का प्रसंग आता है, तब परिवार का श्रम और लोक-संस्कार का आधार सामने आता है। इस रूप में संबोधन संवेदना और समाजालोचना, दोनों का साधन बनता है।

मण्डल जी की काव्यधारा में प्रश्नवाचकता संवादधर्मी संरचना का केंद्रीय अंग है। उनकी कविता प्रायः उत्तर देने के स्थान पर प्रश्न करती है। 'क्यों', 'कैसे', 'किसे कहें' और 'आप ही कहिए' जैसे प्रश्न समाज के विवेक को जगाते हैं। प्रश्न का स्वर पाठक को निष्क्रिय नहीं रहने देता, बल्कि उसे सोचने के लिए बाध्य करता है। ये प्रश्न शास्त्रीय तर्क की कठोर भाषा में नहीं, बल्कि लोक-बातचीत की सहज शैली में उठते हैं। इसीलिए उनका प्रभाव सीधा पड़ता है। 'बान्ह-छेक' में निहित सामाजिक अवरोध, बेटी के प्रति समाज की दृष्टि, श्रम का अवमूल्यन,

पोखर का मान, गाँव से बढ़ता अलगाव और अपने ही मन को छलने की प्रवृत्ति जैसे प्रसंग कविता में लोक-विचार का रूप ग्रहण करते हैं।

प्रश्न करना मण्डल जी के काव्य-स्वर में प्रतिरोध की विधि है। वे प्रतिरोध की घोषणा मात्र नहीं करते। वे प्रश्न द्वारा समाज को सामने खड़ा करते हैं। जब कवि पूछते हैं कि नज़र कहाँ बदली, तब वे आधुनिकता को दावे की कसौटी पर रखते हैं। जब वे पोखर के मान का प्रश्न उठाते हैं, तब जल-संस्कृति और सामुदायिक स्मृति का अवमूल्यन सामने आता है। जब वे बेटी क्यों पूछते हैं, तब स्त्री-विषयक सामाजिक अन्याय खुलता है। इन प्रश्नों में कोई बाहरी दण्ड नहीं है। वहाँ मन की लाज और विवेक जगाने की शक्ति है।

मण्डल जी के काव्य-स्वर में आत्मसंवाद भी महत्त्वपूर्ण है। ‘मन’ उनकी कविता में मात्र भावनात्मक केंद्र नहीं। वह प्रश्न, मंथन, ठगी, विवेक, संशय, पछतावा और निर्णय का क्षेत्र है। ‘मन मथन’ का संकेत इस आत्मसंवाद का पूरा क्षेत्र खोलता है। कवि अपने मन से भी पूछते हैं, समाज के मन से भी पूछते हैं और पाठक के मन से भी पूछते हैं। ‘अपने मन ठकैए’ जैसा संकेत बताता है कि प्रतिरोध बाहर से आरंभ भले ही हो, उसका गहरा आधार मन की ईमानदारी में है। जो मनुष्य अपने मन को ठगता है, वह समाज का पाखंड बदल नहीं सकता। इसलिए मण्डल जी का काव्य-स्वर आत्मालोचनात्मक भी है।

इस आत्मसंवाद में निजी और सामूहिक अनुभव अलग नहीं रह जाते। कवि ‘हम’ कहते हैं, किंतु यह ‘हम’ किसी एक व्यक्ति की सीमा में बँधा नहीं है। इसमें किसान का अनुभव, समाज की पीड़ा और पारिवारिक अंतर्विरोध समाहित हैं। इसी ‘हम’ में श्रम की थकान, लोक-स्मृति और जिजीविषा का सामूहिक स्वर भी सुनाई देता है। मण्डल जी का ‘हम’ धीरे-धीरे ‘हमारे लोक’ का व्यापक अर्थ ग्रहण कर लेता है। इसी कारण उनका आत्मसंवाद लोकसंवाद बन जाता है और निजी स्वर सामाजिक स्वर में रूपांतरित हो जाता है।

उनके काव्य-स्वर की एक विशेषता यह भी है कि वह उपदेशात्मक होने के खतरे से दूर रहता है। विषय गंभीर हैं: श्रम, न्याय, समाज की दरार, स्त्री का प्रश्न, मिट्टी-पानी, मृत्यु, जीवन-जिजीविषा। पर कवि ये सब बात ऊँचे आसन से नहीं कहते। वे लोक की भाषा, संबोधन, प्रश्न, उदाहरण, उलाहना और अनुभव के

सहारे बात कहते हैं। इसी कारण उनकी कविता पाठक पर विचार थोपती नहीं, बल्कि भीतर विचार जगाती है। यह शिल्प मण्डल जी की लोकधर्मी आलोचनात्मकता का आधार है।

पंचायती का संस्कार मण्डल जी की संवादधर्मी संरचना को समझने का एक महत्त्वपूर्ण संकेत देता है। मिथिला के ग्रामीण समाज में पंचायती मात्र विवाद निपटाने की व्यवस्था नहीं है। वह सामूहिक सुनना, पूछना, तर्क करना, लाज जगाना और समाधान खोजने की लोकपद्धति है। मण्डल जी की कविता अनेक जगह पंचायती की इस रचना-शैली का स्मरण कराती है। कवि प्रश्न रखते हैं, लोक को संबोधित करते हैं, उदाहरण देते हैं, गलती दिखाते हैं और अंततः विवेक का मार्ग सुझाते हैं। इस संरचना में कविता सामाजिक मंच बनती है।

मण्डल जी की काव्यधारा में संवाद केवल कवि और पाठक के बीच सीमित नहीं है। कहीं कवि समाज से संवाद करते हैं, तो कहीं अपने मन से। कहीं उनका संवाद स्त्री-संवेदना से है, कहीं किसान के श्रम से; कहीं मिट्टी-पानी से, तो कहीं समय और मृत्यु-बोध से। गाँव-पोखर, चौर-मिट्टी, धान, समय, मन, माँ और बेटी भी संवाद के सहभागी बनते हैं। इसी कारण उनकी कविता में कोई वस्तु या अनुभव पूरी तरह मौन नहीं रहता। सूखा पोखर समाज से प्रश्न करता है। परती मिट्टी श्रम की पुकार बनती है। मरा घाट समाज की मृतप्राय संवेदना पर प्रश्न उठाता है। 'बान्ह-छेक' पूछता है कि समाज मनुष्य की स्वतंत्रता को क्यों रोकता है।

उनके काव्य-स्वर में लोक-उलाहना एक महत्त्वपूर्ण रचनात्मक तत्त्व है। उलाहना प्रेम के भीतर से उठता है। जिससे संबंध नहीं, उसे उलाहना देने की आवश्यकता नहीं। मण्डल जी समाज को उलाहना देते हैं, क्योंकि वे समाज से जुड़े हैं। गाँव को टोकते हैं, क्योंकि गाँव उनकी आंतरिक भूमि है। मनुष्य को चेताते हैं, क्योंकि मनुष्य की संभावना पर उन्हें विश्वास है। इस लोक-उलाहना का स्वर कठोर होते हुए भी आत्मीय रहता है। यह घृणा की भाषा नहीं है। यह सुधार की भाषा है।

व्यंग्य भी उनके संवादधर्मी स्वर का एक आवश्यक अंग है। मण्डल जी समाज के पाखंड, दिखावे, दृष्टिहीनता, आत्म-छल, श्रम के अवमूल्यन और बाहरी

प्रतिष्ठा के मोह पर कई बार लोक-हँसी के माध्यम से आलोचनात्मक चोट करते हैं। यह व्यंग्य अपमानित करने के लिए नहीं है। यह चेहरा दिखाने के लिए है। लोकजीवन में व्यंग्य एक प्रकार का सामाजिक दर्पण है। मण्डल जी इस दर्पण का उपयोग करते हैं। जब वे समाज की चाल पर हँसते हैं, तब वे दरअसल उसका विवेक जगाना चाहते हैं।

काव्य-स्वर का एक रूप करुणात्मक है। किसान का दुःख, स्त्री का अदृश्य श्रम, बेटी पर सामाजिक दबाव और परदेशी की पीड़ा, ये सभी प्रसंग करुणा जगाते हैं। सूखा पोखर, मरा घाट और थका जीवन का बिंब भी करुणा जगाता है। पर मण्डल जी की करुणा विलाप नहीं है। वे पीड़ा को केवल आँसू बनाकर नहीं छोड़ते। वे उसके सामाजिक कारण पूछते हैं, नैतिक अर्थ खोजते हैं और जीवन-जिजीविषा की संभावना यहाँ भी खोजते हैं। इसी कारण करुणा संवाद में बदलती है। कवि पीड़ित से मात्र सहानुभूति नहीं रखते। वे उसके पक्ष में समाज से प्रश्न करते हैं।

उनके काव्य-स्वर में नैतिक आग्रह है, पर यह नैतिकता रूढ़ियों पर आधारित नहीं है। मण्डल जी श्रम के सम्मान, मनुष्य की गरिमा, विवेक, न्याय, आत्मनिर्भरता, स्त्री-सम्मान, लोक-संस्कारों के जीवनदायी तत्त्वों, मिट्टी-पानी के संरक्षण और समाज के पुनर्निर्माण पर बल देते हैं। यह आग्रह आदेश के रूप में नहीं, संवाद की शैली में सामने आता है। कविता कहती है: सोचो, समझो, अपने मन को पहचानो, नज़र बदलो, श्रम का मान करो और विभाजनकारी दीवारें तोड़ो। संवाद की यह शैली उनके नैतिक आग्रह को मानवीय बनाती है।

मण्डल जी की कविता में बात कहने का प्रवाह प्रायः बातचीत जैसा है। एक बात से दूसरी बात निकलती है। प्रश्न उठता है, उदाहरण आता है, स्मृति जुड़ती है। फिर कवि सार पर आकर ठहरते हैं। इस क्रम में कविता कठोर संरचना के बदले जीवित संवाद का रूप ग्रहण करती है। यह शिल्प लोक-मन की स्वाभाविक विचार-गति से जुड़ा है। लोकजीवन में विचार एकरेखीय नहीं होता, अनुभवधर्मी होता है। मण्डल जी की संवादधर्मी कविता इसी अनुभवधर्मी विचार का काव्य-रूप है।

संबोधन और संवाद के कारण उनका पद्य श्रव्यता प्राप्त करता है। यह

कविता मात्र आँख से पढ़ने की वस्तु नहीं है। उसे कान से सुनने की भी जरूरत है। लोकगीत, कथा-वाचन, पंचायती, ओसारे की बातचीत, खेत की पुकार, घर का संबोधन, ये सभी ध्वनियाँ उनके पद्य के भीतर सक्रिय हैं। इस श्रव्यता से कविता जीवित बनती है। पाठक को लगता है कि कागज पर लिखे शब्द नहीं, कोई अपना मनुष्य सामने बैठकर बात कह रहा है।

काव्य-स्वर की इस संवादधर्मिता में सामूहिकता निहित है। आधुनिक कविता प्रायः अत्यंत निजी, एकाकी और आत्मबन्द होती है। मण्डल जी की कविता आत्मबोध अवश्य रखती है, पर आत्मबन्द नहीं है। उसे समाज चाहिए, श्रोता चाहिए, प्रश्न चाहिए, उत्तर चाहिए, संवाद चाहिए। वह लोक के बीच रहकर अपना अर्थ पाती है। इसी कारण उनकी काव्यधारा लोक-संस्कृति का सामूहिक स्वर धारण करती है। 'हम' और 'आप' के बीच जो पुल बनता है, वही कविता को सामाजिक काव्य बनाता है।

मण्डल जी की संवादधर्मी संरचना में विरोधी पक्ष की उपस्थिति भी कई जगह अनुमानित रहती है। कवि जब पूछते हैं, तब मानो सामने समाज है, जिसका उत्तर चाहिए। जब वे उलाहना देते हैं, तब सामने वह मनुष्य है, जिसने भूल की है। जब वे समझाते हैं, तब श्रोता संभावित परिवर्तन का पात्र है। इस अदृश्य संवाद-सहभागिता से कविता एकतरफा घोषणा बनकर नहीं रह जाती। वह बहस का रूप ले लेती है। और वह ऐसी बहस है जो लोकजीवन के लोक-विवेक को सक्रिय करती है।

उनके काव्य-स्वर की एक विशेषता भाषा-संयम भी है। वे गहरे विषय पर अत्यधिक भारी शब्दावली नहीं लादते। लोकशब्द, छोटे वाक्य, प्रश्न, पुनरावृत्ति, संबोधन और बिंब द्वारा अर्थ खोलते हैं। यह संयम संवाद को सहज रखता है। अत्यधिक शास्त्रीयता संवाद तोड़ सकती थी; पर मण्डल जी उससे बचते हैं। वे शोधपरक अर्थ को लोकभाषिक सरलता में गढ़ते हैं। इसी कारण उनकी कविता लोकधर्मी होते हुए भी विचारहीन नहीं, और उसी प्रकार सरल होते हुए भी सतही नहीं है।

काव्य-स्वर में जीवन-जिजीविषा की पुकार भी सुनाई पड़ती है। दुःख के प्रसंग में कवि निष्क्रिय नहीं रहते। वे मनुष्य को हार मानने से रोकते हैं। 'फेरो'

अर्थात् 'पुन:' जैसा शब्द संवाद के माध्यम से जीवन को पुनः पुकारता है। यहाँ कविता मात्र वर्णन नहीं। वह आह्वान बनती है। पर यह आह्वान आक्रामक नहीं, आत्मीय है। मनुष्य के भीतर बचे हुए बल को जगाने का प्रयत्न है। इस रूप में संवाद जीवन-पक्षधर नैतिक ऊर्जा बनता है।

काव्य-स्वर, संबोधन और संवादधर्मी संरचना मण्डल जी के समग्र झुकाव के साथ गहरे रूप से जुड़ी है। उनका झुकाव समाज की ओर है, और उनकी कविता केवल निजी एकालाप के रूप में कैसे सीमित रह सकती है? जिसका झुकाव किसान, श्रमशील मनुष्य, स्त्री, परिवार, लोक-संस्कार और सामाजिक न्याय की ओर हो, उसका स्वर स्वाभाविक रूप से संबोधनमूलक बनता है। मण्डल जी की कविता लोक को मात्र चित्रित नहीं करती। वह लोक से बात करती है। यह बात करना उनकी सामाजिक पक्षधरता, भाषिक लोकधर्मिता और नैतिक विवेक का प्रमाण है।

इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि जगदीश प्रसाद मण्डल जी की काव्यधारा का काव्य-स्वर संवादधर्मी, संबोधनमूलक, आत्मीय और लोक-विवेक से संचालित है। उनकी कविता एकान्त में सीमित कवि का स्वर नहीं; वह समाज के बीच चलती बातचीत का काव्य-रूप है। संबोधन पाठक को सहभागी बनाता है। प्रश्न विवेक जगाता है। आत्मसंवाद मन की ठगी खोलता है। लोक-उलाहना समाज का दोष सामने लाता है। करुणा पीड़ा को मानवीय बनाती है। नैतिक आग्रह जीवन की दिशा स्पष्ट करता है। इस संवादधर्मी संरचना के कारण मण्डल जी की कविता लोकजीवन के भीतर से बोलती, समाज से प्रश्न करती और मनुष्य की गरिमा को पुनः स्थापित करती हुई सजीव काव्य-संसार बनती है। ❑

पंचम खंड:

समाहार, परंपरा और मूल्यांकन

17. मण्डल जी का जीवन-झुकाव और रचनात्मक झुकाव: साम्य और अन्तःसंबंध: जगदीश प्रसाद मण्डल जी के जीवन के झुकाव और उनकी रचना के झुकाव के बीच गहरा साम्य है। यह साम्य बाहरी समानता नहीं है। यह केवल जीवन की घटना और कविता के विषय का सीधा मेल भी नहीं है। यह साम्य उस गहरे धरातल पर स्पष्ट होता है, जहाँ उनका जीवन-अनुभव सामाजिक कर्म और विचार से जुड़ता है। जीवन-अनुभव, सामाजिक कर्म और विचार का यह संबंध उनकी भाषा, लोक-संस्कार, श्रम-बोध, मिट्टी-पानी से लगाव और मनुष्य की गरिमा पर विश्वास में रचनात्मक रूप से प्रकट होता है। मण्डल जी का जीवन समाज की ओर झुका रहा है। उनकी कविता भी समाज में जीते मनुष्य के श्रम, पीड़ा, संघर्ष, विवेक और संभावना की ओर झुकती है। इसी कारण उनकी काव्यधारा जीवन से कटा हुआ काव्याभ्यास नहीं है, और इसलिए वह जिये हुए जीवन की कलात्मक पुनर्संरचना का रूप ले लेती है।

फिर भी लेखक के जीवन और रचना के बीच संबंध को समझते समय सावधानी आवश्यक है। रचना जीवन की सीधी प्रतिलिपि नहीं होती। कवि खेत देखता है, पर कविता में खेत केवल देखा हुआ दृश्य नहीं रह जाता। वह श्रम, आशा, ऋतु, भूख, पारिवारिक जीवन और सामाजिक न्याय को व्यक्त करने वाला बिंब बन जाता है। कवि पोखर देखता है, पर कविता में वह केवल जलाशय नहीं रह जाता। वह सामुदायिक स्मृति, जीवन-रस, सामाजिक क्षय और पर्यावरणीय संकट का प्रतीक बनता है। कवि समाज में खड़ी विभाजनकारी दीवारों को देखता है, पर कविता में यही अनुभव जीवन के अवरोध, विवेक के प्रश्न और प्रतिरोध के स्वर में रूपान्तरित हो जाता है। इस रूपान्तरण में जीवन रचना में प्रवेश करता है और काव्यात्मक संरचना उसे नया अर्थ प्रदान करती है।

मण्डल जी के जीवन की मूल दिशा निजता से अधिक समाज की ओर रही है। इस जीवन-दिशा का काव्यात्मक प्रतिफल उनकी काव्यधारा में बार-बार दिखाई देता है। वे व्यक्तिगत सुख-दुःख को निजी भावुकता की सीमा में बाँधकर नहीं रखते। उनका 'हम' अनेक स्थानों पर लोक का 'हम' बन जाता है। निजी पीड़ा समाज की पीड़ा बनती है। किसान की चिंता सामूहिक अन्न-संकट का प्रतीक बनती है। माँ का श्रम परिवार और लोक-संस्कार का आधार बनता है। मृत्यु का अनुभव जीवन के नैतिक प्रश्न में बदल जाता है। इस प्रकार लेखक का जीवन-झुकाव रचना में सामूहिक अर्थ प्राप्त करता है।

गाँव मण्डल जी के जीवन की आधारभूमि रहा, और उनके काव्य का भी केंद्रीय क्षेत्र है। पर दोनों जगह उसका अर्थ सजावटी नहीं है। जीवन में ग्रामीण परिवेश संघर्ष और श्रम का क्षेत्र रहा है; साथ ही वह परिवार, जातीय-सामुदायिक संबंध, खेत-पथार, जलस्रोत और लोक-रीति के अनुभव से भी जुड़ा रहा है। इसी परिवेश में न्याय-अन्याय, आत्मीयता-दरार और संस्कार-रूढ़ि के जटिल अनुभव उनकी जीवन-दृष्टि को आकार देते हैं। कविता में यह लोक-परिसर उसी संपूर्णता के काव्यात्मक रूप में उपस्थित है। वहाँ स्मृति भी है और प्रश्न भी। आत्मीयता भी है, दरार भी। संस्कार भी है, रूढ़ि का संकट भी। इस तरह लेखक का ग्राम्य जीवन रचना के ग्राम्य-बिंब में रूपान्तरित होकर व्यापक सामाजिक अर्थ ग्रहण करता है।

मण्डल जी के कृषिजन्य जीवनानुभव और उनकी कविता में किसान-झुकाव का संबंध अत्यंत गहरा है। खेत-बीज, धान-ऋतु, चौर-पानी, बाढ़-सूखा, पशुधन, चास-बास और श्रम उनके अनुभव के अंग रहे। इसी कारण उनकी कविता में किसान बाहरी सहानुभूति का पात्र नहीं है। वह जीवन से जुड़ा मनुष्य है। कवि किसान को केवल देखते ही नहीं। वे उसके श्रम का अर्थ, धैर्य का मूल्य, असुरक्षा की पीड़ा और आत्मसम्मान की गरिमा भी समझते हैं। इसी कारण किसान उनके काव्य में समाज के मूल मनुष्य के रूप में खड़ा होता है। लेखक के जीवन का श्रम-संसर्ग रचना के श्रम-दर्शन में बदल जाता है।

उनके समाजसेवी जीवन और कविता के लोक-न्यायधर्मी स्वर के बीच भी स्पष्ट संबंध दिखाई देता है। उन्हें सामाजिक प्रश्नों, जमीन से जुड़े संघर्षों और

सामुदायिक जटिलताओं का प्रत्यक्ष अनुभव रहा है। रूढ़ियों, अन्याय, मुकदमों और लोक-संबंधों के तनाव ने भी उनकी जीवन-दृष्टि को आकार दिया है। इसलिए ये अनुभव रचना में प्रत्यक्ष घटनाओं के विवरण के रूप में नहीं आते, बल्कि सामाजिक विवेक के आग्रह में रूपान्तरित होकर उपस्थित होते हैं। मण्डल जी प्रश्न उठाते हैं: समाज मनुष्य को बाँधता क्यों है? नज़र क्यों नहीं बदलती? श्रम का मान क्यों नहीं होता? बेटी को बोझ क्यों माना जाता है? पोखर का मान क्यों घट रहा है? इन प्रश्नों की जड़ें मण्डल जी के जीवन-संघर्ष में हैं, पर कविता इन्हें लोक-विवेक के सार्वजनीन प्रश्न बना देती है।

मण्डल जी का वैचारिक झुकाव श्रम, विवेक, आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय में केन्द्रित है। उनकी काव्यधारा में ये चारों तत्त्व केवल विचार-कथन के रूप में नहीं आते, बल्कि वे बिंब, भाषा, ध्वनि, संबोधन और प्रतीक के रूप में कार्य करते हैं। श्रम खेत, चौर, धनकटनी, गृहस्थी और स्त्री के काम में मूर्त होता है। विवेक प्रश्नवाचक संरचना में प्रकट होता है। आत्मनिर्भरता चास-बास, मिट्टी-पानी, अपने बल और परदेश-विवशता के प्रसंग में स्पष्ट होती है। सामाजिक न्याय जाति, वर्ग, स्त्री, किसान, मजदूर और लोक-संस्कार के परीक्षण में उभरता है। इस प्रकार विचार रचना में जीवंत काव्य की ऊर्जा बनता है।

मण्डल जी का साहित्यिक झुकाव गद्य से पद्य तक लोक-यथार्थ के निरंतर प्रवाह के रूप में दिखाई देता है। गद्य में जो जीवन पात्र, कथानक और संवाद के माध्यम से खुलता है, पद्य में वही जीवन प्रतीक, ध्वनि, आवृत्ति और संबोधन द्वारा सघन होता है। इस निरंतरता से स्पष्ट हो जाता है कि उनकी कविता किसी अलग सौन्दर्य-लोक में पलायन नहीं करती। वह गद्य-संसार में अनुभव किये गये लोकजीवन का लयात्मक रूपान्तर है। लेखक का समूचा रचनात्मक व्यक्तित्व एक ही जीवन-दृष्टि से संचालित है। विधा बदलती है, इसलिए अभिव्यक्ति का रूप भी बदलता है; पर मूल जीवन-दिशा सभी जगह एक रहती है।

मिट्टी-पानी से उनका जीवनगत जुड़ाव रचना में मिथिला का गहरा काव्य-भूगोल बन उठता है। मिथिला उनके लिए मात्र जन्मभूमि नहीं है; वह जीवन-पद्धति है। रचना में यह जीवन-पद्धति मिट्टी-पानी, कृषि-जीवन, जल-धरातल,

धान-गोधन, ऋतु-अनुभव और ग्राम्य परिवेश के बिम्बों के माध्यम से सामने आती है। लेखक के अनुभव में जो भूगोल जीविका और संस्कार का आधार था, कविता में वही भूगोल सामाजिक और नैतिक अर्थ लेता है। इसी कारण मण्डल जी का मिथिला-बोध अंध गौरव न होकर आलोचनात्मक आत्मीयता बन जाता है।

परिवार और स्त्री-संवेदना के क्षेत्र में भी जीवन और रचना का अन्तःसंबंध स्पष्ट है। ग्रामीण गृहस्थ जीवन में माँ, बेटी, बहन, पत्नी, बहू और सास के रूप में स्त्री की विविध भूमिकाओं, उसके श्रम, पारिवारिक खींचातानी, लोक-संस्कारों और पीढ़ीगत संबंधों का अनुभव उनकी चेतना में गहराई से अंकित रहा है। कविता में यही अनुभव स्त्री के अनकहे श्रम, माइपन के दायित्व, बेटी के प्रश्न, बहन की असुरक्षा, सास-बहू के तनाव और घर की नैतिकता के रूप में व्यक्त हुआ है। यहाँ स्त्री केवल करुणा का पात्र नहीं बनती, बल्कि परिवार, श्रम, संस्कार और जीवनधारा के केंद्र में उपस्थित होती है। मण्डल जी का गृहस्थ जीवनानुभव उनकी रचनाओं में स्त्री-संवेदना के सामाजिक अर्थ को उद्घाटित करता है।

समय और मौसम के बोध में भी मण्डल जी के जीवन और रचना का साम्य उल्लेखनीय है। कृषिजन्य जीवन में समय कैलेण्डर मात्र नहीं होता। वह ऋतु, बीज, पानी और श्रम के चक्र से बनता है; साथ ही अन्न, ऋण, भूख, बाढ़-सूखा और प्रतीक्षा के अनुभव से भी जुड़ा रहता है। मण्डल जी की कविता में रात-दिन, साँझ-भोर, जेठ-माघ, अगहन-पूस, बाढ़-सूखा और घटता दिन इसी जीवनगत समय-बोध के काव्य-रूप हैं। लेखक के जीवन में समय श्रम और संघर्ष की कसौटी था। रचना में वही समय मनुष्य की नैतिक परीक्षा बन जाता है।

मृत्यु-बोध और जीवन-जिजीविषा के क्षेत्र में मण्डल जी के जीवनानुभव और रचना-दृष्टि के बीच गहरा संबंध रहा है। जीवन में संघर्ष, संकट, केस-मुकदमा, सामाजिक दबाव, अभाव और थकान के अनेक स्तर उनकी चेतना को गढ़ते हैं। शारीरिक-मानसिक थकान और मृत्यु-समीप अनुभव भी इस चेतना से जुड़ते हैं। कविता में यह अनुभव 'फेरो हम', 'मरल घाट', 'भूत बनि भुतियाएल', 'जिनगीक बीच जिनगी' जैसे बिम्बों में प्रकट होता है। वे जीवन की टूटन देखते

हैं, पर टूटन को अंतिम सत्य नहीं मानते। उनकी रचना में जीवन की वही नैतिक जिद उपस्थित है, जो जीवन के संघर्ष से उपजी है।

भाषिक स्तर पर लेखक के झुकाव और रचना के झुकाव का साम्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। मण्डल जी का जीवन लोकभाषा के परिवेश में विकसित हुआ है। गाँव की बातचीत, पंचायती की शैली, खेत के शब्द, परिवार के संबोधन, समाज की टोक और लोकगीत की लय, ये सब उनके भाषा-संस्कार के अंग रहे हैं। कविता में वही भाषा रचनात्मक रूप लेती है। वे शास्त्रीय आडम्बर से मुक्त, लोकध्वनिमय, संबोधनमूलक और आवृत्तिमय भाषा गढ़ते हैं। इसी कारण भाषा मात्र माध्यम नहीं, बल्कि वह उनकी जीवनगत लोक-निकटता का प्रमाण बनती है।

प्रतीक-संसार में भी जीवन और रचना का यह अन्तःसंबंध स्पष्ट है। मण्डल जी जिन वस्तुओं, स्थितियों और अनुभवों से जीवन में जुड़े रहे, वही उनकी कविता में प्रतीक बनकर उपस्थित हुए। पोखर-चौर, मिट्टी-पानी, धान, पेड़-फूल, कामधेनु, अकास-गंगा, मन, घाट-घर, गाँव, परदेश और 'बान्ह-छेक' से व्यक्त सामाजिक अवरोध उनके जीवनानुभव के घटक हैं। कविता में ये सभी जीवन-दर्शन के वाहक बन जाते हैं। इसी कारण उनके प्रतीक कृत्रिम नहीं लगते। वे पाठक की जीवन-स्मृति से जुड़ते हैं और धीरे-धीरे व्यापक सामाजिक अर्थ खोलते हैं। इस प्रकार जीवन का ठोस अनुभव रचना में प्रवेश कर प्रतीक बनता है और प्रतीकात्मक रूप ग्रहण करते ही अधिक गहरा अर्थ प्राप्त कर लेता है।

काव्य-स्वर में लेखक का सामाजिक झुकाव प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त होता है। जिसका जीवन समाज के बीच रहा, उसकी कविता समाज से संवाद करती है। मण्डल जी के काव्य में प्रश्न, संबोधन, उलाहना, करुणा, आत्मसंवाद और लोक-विवेक का स्वर इसी जीवनगत स्थिति से जुड़ा है। वे आदेश नहीं देते। वे संवाद करते हैं। वे घोषणात्मक स्वर नहीं अपनाते। वे प्रश्न उठाते हैं। वे समाज को छोड़ते नहीं। वे उसे जगाते हैं। इस संवादधर्मी स्वर में उनके सामाजिक जीवन की स्मृति और लोकधर्मी काव्यशिल्प एक साथ मिलते हैं।

मण्डल जी के जीवन के झुकाव और रचना के झुकाव में साम्य है, पर वे पूर्णतः एक समान नहीं। जीवन अनुभव देता है; रचना उसका अर्थ-निर्माण करती

है। जीवन घटना देता है; कविता उसका प्रतीक बनाती है। जीवन पीड़ा देता है; कविता उसकी करुणा और प्रतिरोध रचती है। जीवन समाज की दरार दिखाता है; कविता उसका आलोचनात्मक विवेक बनती है। इस भेद को समझना आवश्यक है। यदि रचना को जीवन का सीधा प्रतिलेख माना जाए, तो काव्य की सर्जनात्मक शक्ति घट जाती है। और यदि जीवन से उसका संबंध काट दिया जाए, तो उनकी काव्यधारा का लोक-आधार अस्पष्ट हो जाता है। सही दृष्टि यह है कि जीवन और रचना अन्तःसम्बद्ध हैं, पर रचना जीवन का रचनात्मक रूपान्तरण है।

इस अन्तःसंबंध के कारण मण्डल जी की कविता में प्रामाणिकता आती है। पाठक अनुभव करता है कि कवि उस विषय पर बोल रहे हैं, जिसे उन्होंने दूर से नहीं देखा, भीतर से जिया है। किसान की बात में खेत की ध्वनि है। स्त्री की बात में गृहस्थ जीवन का यथार्थ है। समाज की आलोचना में मन की लाज और प्रेम है। मिट्टी-पानी के बिंब में जमीन की गन्ध है। मृत्यु-बोध में जीवन-संघर्ष का ताप है। भाषा में लोक की सच्चाई है। यह प्रामाणिकता उनकी काव्यधारा की महत्त्वपूर्ण शक्ति बन चुकी है।

मण्डल जी के झुकाव के मूल में मनुष्य की पक्षधरता भी है। जीवन में यह पक्षधरता समाजसेवा, कृषिजन्य जीवन, लोक-संबंध, संघर्ष और न्याय-बोध के रूप में दिखाई देती है। रचना में वही पक्षधरता किसान, मजदूर, स्त्री, गरीब गृहस्थ, परदेशी, दुःखी मनुष्य, संघर्षशील परिवार और विवेक खोजते समाज के रूप में प्रकट होती है। यह पक्षधरता भावुक सहानुभूति नहीं। यह मानवीय गरिमा का आग्रह है। मण्डल जी की कविता मनुष्य को उसके श्रम, दुःख, जिद, प्रेम, विवेक और सामाजिक दायित्व सहित देखती है।

जीवन और रचना के इस साम्य का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष आलोचनात्मक प्रेम है। मण्डल जी गाँव से प्रेम करते हैं, इसलिए उसकी आंतरिक दरारें नहीं छिपाते। वे समाज के पक्ष में हैं, इसलिए उसमें खड़ी विभाजनकारी दीवारों पर प्रश्न उठाते हैं। लोक-संस्कारों को महत्त्व देते हैं, इसलिए उनमें व्याप्त रूढ़ियों और पाखंड की आलोचना करते हैं। किसान के श्रम का सम्मान करते हैं, इसलिए कृषि-संकट को सामने लाते हैं। परिवार के महत्त्व को स्वीकार करते हैं, इसलिए

उसके भीतर विद्यमान अन्याय को भी देख पाते हैं। इस आलोचनात्मक प्रेम में उनके जीवन और रचना का नैतिक स्वर एकाकार हो जाता है।

इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि मण्डल जी के जीवनगत झुकाव और काव्य-रचना के झुकाव के बीच गहरा साम्य और अन्तःसंबंध है। उनके जीवन में जो समाज-दृष्टि, श्रम-बोध, मिट्टी-पानी से लगाव, लोक-संस्कार का अनुभव, किसान की पक्षधरता, विवेक का आग्रह और सामाजिक न्याय की चेतना विकसित हुई, वही उनकी काव्यधारा में अनेक रूपों में प्रकट हुई है। विषय-चयन में वह लोकजीवन और श्रमशील मनुष्य की ओर झुकता है; भाषा में लोकध्वनि और आत्मीय संबोधन बनकर आता है; प्रतीक और बिंब में मिट्टी, पानी, खेत, पोखर, गाँव और समय का अर्थ ग्रहण करता है; और प्रश्न, प्रतिरोध तथा जीवन-जिजीविषा के रूप में उसका नैतिक स्वर स्पष्ट होता है। पर रचना जीवन की प्रतिलिपि नहीं है। वह जीवन का काव्यात्मक पुनर्सृजन है। इस पुनर्सृजन में मण्डल जी लोकजीवन के प्रत्यक्ष अनुभव को व्यापक मानवीय अर्थ में रूपान्तरित करते हैं। इसी रूपान्तरण में उनके काव्य-झुकाव की सबसे गहरी पहचान निहित है।

18. मैथिली काव्य-परंपरा में मण्डल जी के झुकाव की विशिष्टता: मैथिली काव्य-परंपरा अत्यंत समृद्ध, बहुरंगी और बहुस्तरीय रही है। इस परंपरा में भक्ति, शृंगार, लोकगीत की सहज लय, मिथिला की प्रकृति, आध्यात्मिकता, सामाजिक चेतना, आधुनिक मन की बेचैनी और भाषा-संस्कार की दीर्घ परंपरा एक साथ विकसित हुई है। किसी कवि की विशिष्टता समझने के लिए उसे इस समृद्ध परंपरा से काटकर नहीं देखा जा सकता। जगदीश प्रसाद मण्डल जी की काव्यधारा की विशिष्टता भी तभी स्पष्ट होती है, जब उन्हें मैथिली काव्य की व्यापक पृष्ठभूमि में रखकर पढ़ा जाता है। इस पठन से स्पष्ट होता है कि मण्डल जी मैथिली काव्य-परंपरा से अलग होकर नहीं बोलते; उनका स्वर उसी परंपरा के भीतर से उठता है। पर वे परंपरा को केवल दोहराते नहीं। वे लोकजीवन के ठोस अनुभव और संवादधर्मी लोकभाषा को आधार बनाकर परंपरा को नया अर्थ देते हैं। इस अर्थ में उनकी कविता मैथिली काव्यधारा में लोक-यथार्थवादी और जीवनधर्मी दिशा स्पष्ट करती है।

मैथिली काव्य-परंपरा में लोकध्वनि आरंभ से महत्त्वपूर्ण रही है। गीत, विवाह-संस्कार, ऋतु-गीत, देवी-गीत, कृषिजन्य लोकध्वनि, पारिवारिक संबोधन और पर्व-त्योहार के गायन मिथिला की सांस्कृतिक स्मृति में गहरे रूप से रचे-बसे हैं। मण्डल जी इस लोकध्वनि से जुड़ते हैं, पर मात्र परंपरागत लोकगीत का अनुकरण नहीं करते। वे लोकध्वनि में वर्तमान समाज का प्रश्न जोड़ते हैं। उनके गीत और कविता में लय है, आवृत्ति है, संबोधन है। पर ये सब केवल गेयता के लिए नहीं। वे सामाजिक चेतना, श्रम का मान, स्त्री का प्रश्न, किसान की पीड़ा, आत्मनिर्भरता और लोक-न्याय के आग्रह के वाहक बनते हैं। इस रूप में मण्डल जी लोकध्वनि को आधुनिक सामाजिक विवेक से जोड़ते हैं।

जेसा मैंने पहले ही कहा कि मैथिली काव्य की एक दीर्घ परंपरा प्रेम, भक्ति और श्रृंगार की रही है। मण्डल जी इस परंपरा का विरोध नहीं करते, पर उनकी काव्य-दृष्टि अलग धरातल पर केन्द्रित है। उनका प्रेम निजी मिलन-विरह के क्षेत्र में सीमित नहीं। वह गाँव, मिट्टी, पानी, किसान, परिवार, माँ, बेटी, श्रमशील मनुष्य और समाज के प्रति आलोचनात्मक प्रेम के रूप में प्रकट होता है। वे सौन्दर्य देखते हैं, पर सौन्दर्य को जीवन के श्रम से अलग नहीं करते। वे करुणा का अनुभव करते हैं, पर करुणा को निष्क्रिय विलाप नहीं बनाते। इसी कारण उनकी कविता श्रृंगारिक कोमलता से अधिक जीवन-संघर्ष का करुण-गंभीर सौन्दर्य रचती है।

मण्डल जी की विशिष्टता इस बात में विशेष रूप से दिखाई देती है कि वे किसान को मैथिली कविता में केंद्रीय काव्य-विषय बनाते हैं। मैथिली साहित्य में गाँव, खेत, ऋतु और लोकजीवन का उल्लेख पहले से रहा है। पर मण्डल जी की काव्यधारा में किसान मात्र ग्रामीण परिवेश का अंग नहीं। वह समाज का नैतिक केंद्र है। किसान का श्रम, धैर्य, जोखिम, चास-बास, चौर-पानी, धान-बीज, बाढ़ की मार, सूखा की चिंता और परदेश की विवशता उनकी कविता में जीवन-दर्शन का आधार बनते हैं। इस दृष्टि से उनका किसान-काव्य दयावादी नहीं, सम्मानवादी है। यह मैथिली काव्य-परंपरा में श्रमशील मनुष्य की प्रतिष्ठा को नया अर्थ-गाम्भीर्य देता है।

उनका मिट्टी-पानी का बोध भी विशिष्ट है। प्रकृति मैथिली काव्य का एक पुराना और प्रिय क्षेत्र रही है। पर मण्डल जी प्रकृति से मात्र रूप-सौन्दर्य ग्रहण

नहीं करते। उनके यहाँ मिट्टी खेत है, जन्मभूमि है, श्रम का क्षेत्र है, अन्न का गर्भ है और समाज का आधार है। पानी जीवन है, पर बाढ़ और सूखा का संकट भी। पोखर सामुदायिक स्मृति है। चौर किसान की परीक्षा है। ऋतु देह और श्रम की कसौटी है। इसी कारण मण्डल जी का प्रकृति-काव्य लोक-पर्यावरण, कृषि-संस्कृति, सामाजिक न्याय और आत्मनिर्भर जीवन के प्रश्न से जुड़ जाता है। यह प्रकृति-बोध मैथिली काव्यधारा में अलग पहचान बनाता है।

मण्डल जी को मात्र 'ग्राम्य कवि' कहने से उनकी काव्यधारा का पूरा अर्थ नहीं खुलता। वे गाँव के कवि अवश्य हैं, किंतु केवल उसके दृश्यों, रीति-रिवाजों और स्मृतियों के कवि नहीं हैं। वे गाँव के संकटों, उसकी आंतरिक दरारों और विभाजनकारी सामाजिक संरचनाओं के कवि हैं; ग्रामीण श्रम, स्त्री-जीवन, किसान, जल-संरचना और लोक-विवेक के भी कवि हैं। वस्तुतः वे गाँव के समग्र जीवन के कवि हैं। उनका गाँव अतीत-मोह का सुरक्षित आश्रय नहीं, बल्कि एक संघर्षरत समाज है। इसी कारण उनका ग्राम्य-बोध लोकचित्रण से आगे बढ़कर सामाजिक आलोचना बनता है। यह बात उन्हें मैथिली परंपरा की सामान्य ग्रामीण कविता से अलग खड़ा करती है।

मण्डल जी की कविता में सामाजिक प्रतिरोध का स्वर विशेष महत्त्व रखता है। मैथिली काव्य-परंपरा में सामाजिक चेतना अनेक रूपों में प्रकट हुई है। पर मण्डल जी के प्रतिरोध का आधार लोकजीवन के भीतर है। वे समाज से अलग खड़े होकर समाज की निंदा नहीं करते। वे समाज के भीतर से समाज को टोकते हैं। जाति-भेद, श्रम का अवमूल्यन, स्त्री का असम्मान, परिवार का विघटन, पाखंड, परनिर्भरता, स्मृतिहीन आधुनिकता और लोक-संस्कार की जड़ता पर वे प्रश्न उठाते हैं। पर वे समाज को तोड़ने की भाषा नहीं गढ़ते। वे समाज का विवेक जगाने की भाषा गढ़ते हैं। इसी कारण उनका प्रतिरोध लोकधर्मी और जीवन-निर्माणकारी बन जाता है।

उनकी भाषा मैथिली काव्य-परंपरा में विशिष्ट योगदान रखती है। वे लोकभाषा को मात्र स्वाद या रंग के लिए नहीं अपनाते। उनकी भाषा जीवन के वास्तविक धरातल से उठती है। उसमें कृषिजन्य शब्दावली, पारिवारिक संबोधन, लोक-ध्वनि, पंचायती के प्रश्न, गाँव की बातचीत, श्रम की ताल, समाज की

टोका-टोकी और मन का मंथन उपस्थित है। यह भाषा न बहुत शास्त्रीय बनकर पाठक से दूर होती है, और न साधारण बातचीत में बिखर जाती है। मण्डल जी लोकशब्द को काव्यात्मक अर्थ-दबाव देते हैं। इसी कारण उनकी काव्यभाषा लोकधर्मी होते हुए भी साहित्यिक गरिमा प्राप्त करती है।

मैथिली काव्य-परंपरा की गीतात्मकता मण्डल जी के काव्य में नया अर्थ पाती है। उनकी कविता में गीत की लय, आवृत्ति और संबोधन है, पर वह मात्र मधुरता के लिए नहीं। वह लय जीवन की श्रम-ताल से जुड़ी है। आवृत्ति किसान के निरंतर संघर्ष, समय के चक्र, मन के मंथन और समाज के बार-बार उठते प्रश्नों को व्यक्त करती है। संबोधन कविता को सामूहिक संवाद बनाता है। इस प्रकार गीतात्मकता भावुक संगीत नहीं रह जाती। वह लोक-विवेक की काव्य-रचना बनती है।

मण्डल जी का प्रतीक-संसार मैथिली कविता में उनकी विशिष्ट लोक-यथार्थवादी उपलब्धि है। उनके प्रतीक कठिन, कृत्रिम या अत्यधिक बौद्धिक नहीं हैं। मिट्टी-पानी, कृषि-जीवन और जल-धरातल, धान-बीज, पेड़-फूल, रात-दिन, जेठ-माघ, कामधेनु, अकास-गंगा, मन, घाट-घर, ग्राम्य परिवेश, परदेश और 'बान्ह-छेक' लोकजीवन के परिचित अनुभव और संकेत हैं। किंतु कविता में ये सभी बहुस्तरीय अर्थ ग्रहण करते हैं। सूखा पोखर समाज की सूखती संवेदना का संकेत बनता है। परती मिट्टी निष्क्रिय चेतना का बिंब बनती है। नीचरस जमीन किसान की परीक्षा का रूप ग्रहण करती है। 'बान्ह-छेक' विभाजनकारी सामाजिक अवरोधों को मूर्त करता है। इस प्रकार मण्डल जी लोकजीवन की परिचित वस्तुओं और अनुभवों से गहरे प्रतीक रचते हैं।

मिथकीय प्रतीक के उपयोग में भी उनकी मौलिकता दिखाई देती है। 'कामधेनु' जैसा प्रतीक परंपरागत रूप से इच्छापूर्ति और समृद्धि से जुड़ा है। पर मण्डल जी उसे चमत्कार के क्षेत्र में नहीं छोड़ते। वे उसे पशुधन, सेवा, गृहस्थ जीवन, श्रम, चास-बास, पोषण और आत्मनिर्भरता से जोड़ते हैं। इस तरह मिथकीय प्रतीक लोक-आर्थिक और नैतिक अर्थ प्राप्त करता है। इस तरह मण्डल जी परंपरा को दोहराते नहीं। वे उसे लोकजीवन के ठोस धरातल पर फिर से अर्थवान बनाते हैं।

उनकी काव्यधारा में परिवार और स्त्री-संवेदना का स्थान भी विशिष्ट है। मैथिली काव्य-परंपरा में स्त्री अनेक रूपों में उपस्थित रही है। पर मण्डल जी की कविता में स्त्री मात्र प्रेमिका, करुणा-पात्र या लोक-संस्कार का बाहरी प्रतीक नहीं। वह माँ, बेटी, बहन, पत्नी, बहू, गृहस्थ स्त्री, श्रमशील स्त्री और जीवन-संरचना के केंद्र के रूप में उपस्थित है। बेटी का प्रश्न समाज के विवेक का प्रश्न बनता है। माइपन श्रम, दायित्व और संस्कार के रूप में खुलता है। सास-बहू संबंध परिवार का संरचनात्मक तनाव सामने लाता है। इस रूप में मण्डल जी स्त्री-संवेदना को सामाजिक न्याय और लोक-संस्कार के आलोचनात्मक धरातल से जोड़ते हैं।

मण्डल जी की कविता में समय और मौसम का उपयोग भी विशिष्ट है। ऋतु मैथिली काव्यधारा में सदा से प्रिय विषय रही है। पर मण्डल जी के जेठ-माघ, अगहन-पूस, बरसात-सूखा, रात-दिन, साँझ-भोर मात्र प्रकृति-चक्र नहीं। ये किसान के श्रम, परिवार के अन्न, देह की कठिनाई, सामाजिक उत्तरदायित्व और जीवन-परीक्षा के बिंब हैं। इसी कारण उनका ऋतु-बोध कृषिजन्य समाज का वास्तविक समय-बोध है। वे समय को केवल सौन्दर्यात्मक संकेत के रूप में नहीं पढ़ते। वे उसे नैतिक और सामाजिक कसौटी के रूप में पढ़ते हैं।

जीवन-जिजीविषा मण्डल जी की काव्यधारा का एक विशिष्ट मानवीय आधार है। वे दुःख के कवि हैं, पर निराशा के कवि नहीं। वे मृत्यु-बोध के कवि हैं, पर जीवन-विमुखता नहीं रचते। वे संघर्ष के कवि हैं, पर उनका स्वर हिंसक आक्रोश तक सीमित नहीं रहता। 'फेरो हम' जैसा स्वर उनकी कविता को जीवन के पुनरारम्भ की कविता बनाता है। किसान का फिर बीज रखना, स्त्री का फिर घर संभालना, समाज का फिर विवेक खोजना और मनुष्य का फिर उठना, ये सब उनकी काव्यधारा की जीवन-पक्षधर विशिष्टता को स्पष्ट करते हैं।

मण्डल जी की कविता में विचार है, किंतु वह नारे में नहीं बदलता। श्रम, विवेक, आत्मनिर्भरता, सामाजिक न्याय, पाखंड-विरोध, स्त्री-सम्मान और किसान की गरिमा जैसे विचार उनकी काव्यधारा में स्पष्ट दिखाई देते हैं। किंतु ये विचार प्रत्यक्ष उपदेश के रूप में नहीं आते। खेत, पोखर, चौर और 'बान्ह-छेक' जैसे ग्राम्य तथा सामाजिक बिंब; घर, माँ, बेटी और मन जैसे पारिवारिक तथा

आंतरिक संकेत; और बाढ़, सूखा, रात-दिन तथा समय जैसे जीवन-संघर्ष एवं काल-बोध के बिंबों के माध्यम से ये विचार काव्यात्मक रूप ग्रहण करते हैं। इसी कारण विचारधर्मिता उनकी कविता की काव्यात्मकता को बाधित नहीं करती। यह संतुलन उनकी साहित्यिक विशिष्टता का महत्त्वपूर्ण आधार है।

मैथिली काव्य-परंपरा में शास्त्रीयता और लोकधर्मिता, दोनों धाराएँ रही हैं। मण्डल जी इन दोनों में लोकधर्मिता के पक्ष में स्पष्ट खड़े दिखाई देते हैं। पर वे लोकधर्मिता को असंयमित या अनगढ़ रूप में नहीं छोड़ते। वे लोकभाषा, लोकजीवन, लोक-संस्कार, लोकध्वनि और लोक-प्रतीक को विचार-संगठित और शिल्पगत रूप देते हैं। इस अर्थ में वे लोक को साहित्यिक गरिमा प्रदान करते हैं। उनकी कविता प्रमाणित करती है कि लोकजीवन की भाषा में गहरा दर्शन, सामाजिक आलोचना और काव्यात्मक शक्ति निहित रहती है।

उनका काव्य-स्वर संवादधर्मी है, और यह मैथिली लोक-संस्कृति की गहरी परंपरा से जुड़ा है। मिथिला के समाज में पंचायती, ओसारे की बातचीत, खेत की वार्ता, लोकगीत, विवाह-गान, व्रत-गीत और सामूहिक सुनने-बोलने की परंपरा है। मण्डल जी की कविता इस संवाद-परंपरा को आधुनिक आलोचनात्मक चेतना देती है। वे भैया, मीत, बहिनी, मैया, अहीं कहू जैसे संबोधन द्वारा पाठक को सम्मिलित करते हैं। इस शैली में कविता श्रोता-विहीन भाषण नहीं है। वह सहभागी लोकसंवाद बनती है।

मण्डल जी की विशिष्टता इस बात में भी है कि वे स्थानीय अनुभव को व्यापक मानवीय अर्थ देते हैं। 'रहसा चौरी' मिथिला का विशिष्ट चौर है, पर उसका संघर्ष केवल एक भूभाग का संघर्ष नहीं रह जाता; वह श्रमशील मनुष्य के धैर्य, श्रम और जीविका के संघर्ष का प्रतीक बन उठता है। 'सुखाएल पोखैर' गाँव का दृश्य है, पर वह सूखती सामुदायिकता, पर्यावरणीय उपेक्षा और जीवन-स्रोत के संकट को भी व्यक्त करता है। बेटी मिथिला के परिवार का प्रश्न है, पर वह स्त्री की मानवीय गरिमा के व्यापक प्रश्न में रूपान्तरित हो जाती है। किसान मिथिला के खेत में खड़ा है, पर वह श्रमशील मनुष्य का सार्वमानवीय प्रतीक बनता है। इस तरह मण्डल जी स्थानीयता को संकीर्ण नहीं रहने देते; वे उसे लोकजीवन से जोड़कर व्यापक मानवीय अर्थ देते हैं।

उनकी कविता का एक साहित्यिक महत्त्व इसमें है कि वह मैथिली काव्य को जीवन के ठोस धरातल पर पुनः स्थापित करती है। आधुनिकता प्रायः भाषा और जीवन के बीच दूरी बना देती है। मण्डल जी इस दूरी को घटाते हैं। वे कविता को लोक-परिसर, घर-आँगन, कृषि-जल धरातल, श्रम, स्त्री, किसान, समाज, मन और समय के बीच वापस लाते हैं। पर यह वापसी अतीत की ओर पलायन नहीं है। वे वर्तमान के प्रश्न, बदलते समय, परदेश, सामाजिक दरार, स्मृतिहीनता, पाखंड और आत्मनिर्भरता के संकट को गंभीरतापूर्वक उठाते हैं। इसी कारण उनकी कविता लोकजीवन की आधुनिक आलोचना बनती है।

मण्डल जी की काव्यधारा भाव, विचार और जीवन-सत्य के त्रिकोण पर खड़ी है। भाव के बिना कविता कठोर होती है। विचार के बिना कविता दिशाहीन होती है। जीवन-सत्य के बिना कविता बनावटी होती है। मण्डल जी इन तीनों को जोड़ते हैं। उनका भाव करुणा, आत्मीयता, मिट्टी-पानी के प्रेम, स्त्री की संवेदना और जीवन-जिजीविषा में प्रकट होता है। विचार श्रम, विवेक, सामाजिक न्याय और आत्मनिर्भरता में दिखाई देता है। जीवन-सत्य किसान, मजदूर, गाँव, परिवार, बाढ़-सूखा, चास-बास, परदेश और समाज की दरार में मिलता है। इस त्रिकोण के कारण उनकी कविता गंभीर और विश्वसनीय बनती है।

इस परिप्रेक्ष्य में मण्डल जी के काव्य-झुकाव की विशिष्टता पाँच प्रमुख आधारों पर समझी जा सकती है। पहला, उनकी कविता लोकजीवन को बाहरी दृश्य नहीं, जीवन का केंद्र मानती है। दूसरा, वह किसान और श्रमशील मनुष्य को सामाजिक-नैतिक गरिमा देती है। तीसरा, वह मिट्टी-पानी, पोखर, चौर, ऋतु और खेत को प्रतीकात्मक और सामाजिक अर्थ देती है। चौथा, वह लोकभाषा को काव्यभाषा की गरिमा प्रदान करती है। पाँचवाँ, वह सामाजिक प्रतिरोध को घृणा या विनाश के बदले विवेक, संवाद और पुनर्निर्माण की दिशा देती है। इन्हीं पाँच आधारों पर मण्डल जी मैथिली काव्य-परंपरा में अपने लिए विशिष्ट स्थान निर्मित करते हैं।

इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि मैथिली काव्य-परंपरा में मण्डल जी का झुकाव लोक-यथार्थवादी, श्रम-केन्द्रित, मिट्टी-पानी-सम्बद्ध, सामाजिक-विवेकधर्मी और संवादमूलक विशिष्टता रखता है। वे परंपरा से जुड़ते हैं, पर

उसकी पुनरावृत्ति नहीं करते। वे लोकध्वनि को अपनाते हैं, पर उसे वर्तमान जीवन के प्रश्न से जोड़ते हैं। यही उनकी खास विशेषता है। इसके साथ उनकी विशिष्टता इसमें भी है कि वे किसान, स्त्री, ग्रामीण जीवन, श्रम, कृषि-जल धरातल, परिवार, समय और समाज की दरार को कविता में प्रतिष्ठा देते हैं। वे जीवन की कठिनाई देखते हैं, पर जीवन से विश्वास नहीं तोड़ते। इसी कारण उनकी काव्यधारा मैथिली कविता में लोकजीवन के गहरे, आलोचनात्मक, मानवीय और नैतिक स्वर के रूप में स्थापित होती है। ❑

उपसंहार

'झुकाव का परीक्षण' का मूल उद्देश्य जगदीश प्रसाद मण्डल जी के काव्य-संग्रहों का क्रमिक परिचय प्रस्तुत करना नहीं है। वास्तव में इसका उद्देश्य उनकी काव्यधारा के भीतर सक्रिय जीवन-दिशा, मूल्य-दृष्टि, संवेदनात्मक केंद्र और भाषिक-शिल्पगत प्रवृत्ति की पहचान करना है। इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मण्डल जी का काव्य-संसार अनेक शीर्षकों, अनेक प्रतीकों, अनेक विषयों और अनेक भावभूमियों को अपने भीतर समाहित करता है। पर उसकी आंतरिक गति एक गहरे लोकजीवनधर्मी झुकाव द्वारा संचालित है। यह झुकाव समाज, किसान, श्रम और मिथिला की मिट्टी-पानी की ओर उन्मुख है। साथ ही वह स्त्री के अनकहे श्रम, परिवार की नैतिकता, समय और जीवन-परीक्षा के बोध, मनुष्य की गरिमा और नैतिक विवेक को भी अपनी काव्य-दृष्टि के केंद्र में रखता है।

'झुकाव' शब्द इस अध्ययन में सामान्य रुचि, पसंद या भावात्मक आकर्षण के अर्थ में नहीं लिया गया है। इसे लेखक के रचनात्मक व्यक्तित्व की आंतरिक दिशा के रूप में ग्रहण किया गया है। मण्डल जी की काव्यधारा को इस दृष्टि से पढ़ने पर समझ में आता है कि उनकी कविता आकस्मिक काव्य-अभ्यास नहीं है। यह कविता दीर्घ जीवनानुभव, सामाजिक कर्म, कृषिजन्य चेतना, लोकभाषिक संस्कार, गद्य-साधना और नैतिक संघर्ष से उपजी है। मण्डल जी ने जो जीवन जिया, जो समाज देखा और जो श्रम समझा, वह सब उनकी काव्य-दृष्टि का आधार बना। साथ ही अन्याय का अनुभव और लोक-संस्कार का गहरा आत्मसात् भी उनकी रचनात्मक चेतना को आकार देता रहा। ये सभी अनुभव उनकी कविता में प्रत्यक्ष घटना के रूप में नहीं आते, बल्कि काव्यात्मक रूपान्तरण के रूप में उपस्थित होते हैं। इसी कारण उनकी काव्यधारा जीवन की प्रतिलिपि नहीं है। वह जीवन का रचनात्मक पुनर्सृजन है।

इस पुस्तक के प्रथम खंड में 'झुकाव' की अवधारणा, उसके

आलोचनात्मक उपयोग, स्रोत, पद्धति और सीमा का निर्धारण हुआ है। उससे स्पष्ट हुआ कि मण्डल जी की काव्यधारा को पुस्तकवार परिचय तक सीमित करना उसके वास्तविक स्वरूप के साथ न्याय नहीं। उनकी कविता विभिन्न पुस्तकों में फैली हुई है, पर उसकी मूल चिंता समान जीवन-धरातल से जुड़ी है। इस अध्ययन में पुस्तकों को प्रमाण-स्रोत के रूप में ग्रहण किया गया। पर आलोचनात्मक केंद्र प्रवृत्ति, मूल्य, भाषा, प्रतीक और जीवन-दृष्टि रहा है। इस पद्धति से मण्डल जी की काव्यधारा में विद्यमान अन्तःसंगति अधिक स्पष्ट रूप से सामने आती है।

द्वितीय खंड में मण्डल जी के जीवन, समाज, विचार और साहित्यिक झुकाव पर विचार किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि उनके जीवन की दिशा निजता से अधिक समाज की ओर रही है। गाँव, खेत, चास-बास और किसान का अनुभव उनके व्यक्तित्व का आधार बना। साथ ही लोक-संस्कार, समाजसेवा, संघर्ष, केस-मुकदमा, लोक-संबंध, आत्मनिर्भरता और सामाजिक दायित्व उनकी जीवन-दृष्टि को गढ़ते रहे। यह जीवन-स्रोत उनकी काव्यधारा में मिथिला की मिट्टी-पानी, श्रमशील मनुष्य, लोक-न्याय, सामाजिक प्रतिरोध और जीवन-जिजीविषा के रूप में उभरता है। यहाँ जीवन और कविता का संबंध यांत्रिक नहीं है; वह गहरा, अन्तःसम्बद्ध और रचनात्मक संबंध है।

मण्डल जी का सामाजिक झुकाव गाँव, किसान, श्रम और लोक-न्याय में केन्द्रित है। पर वे गाँव को सजावटी या आदर्शवादी रूप में नहीं देखते। वे गाँव की आत्मीयता देखते हैं, और उसके साथ गाँव की दरार भी देखते हैं। वे लोक-संस्कार का महत्त्व स्वीकार करते हैं, पर रूढ़ि और पाखंड का समर्थन नहीं करते। वे किसान की पीड़ा देखते हैं, पर उसे दया-पात्र में सीमित नहीं करते। वे श्रम का सम्मान करते हैं, क्योंकि श्रम उनके लिए मनुष्य की गरिमा और समाज का आधार रहा है। इस दृष्टि से उनका सामाजिक झुकाव आलोचनात्मक प्रेम का रूप ग्रहण करता है। वे समाज से जुड़े हैं, इसलिए समाज को टोकते हैं। वे लोकजीवन से प्रेम करते हैं, इसलिए लोकजीवन में विद्यमान अन्यायों को छिपाते नहीं हैं।

मण्डल जी का वैचारिक झुकाव श्रम, विवेक, आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय के समेकित धरातल पर स्थित है। ये चारों तत्त्व अलग-अलग

विचार-घोषणा नहीं हैं। वे एक ही जीवन-दृष्टि के परस्पर सम्बद्ध आधार हैं। श्रम मनुष्य को धरती से जोड़ता है। विवेक उसे पाखंड और अंधरूढ़ि से बचाता है। आत्मनिर्भरता उसकी सामाजिक और मानसिक गरिमा सुरक्षित रखती है। सामाजिक न्याय उसके जीवन को मानवीय बनाता है। मण्डल जी इन मूल्यों को प्रचारक भाषा में नहीं कहते। वे खेत, पोखर, चौर, परिवार, स्त्री, अन्न, पानी, समय, मन और समाज के बिम्बों द्वारा इन्हें व्यक्त करते हैं। इसी कारण विचार उनके काव्य में काव्यात्मक जीवन प्राप्त करता है।

तृतीय खंड में काव्य-संसार का विषयगत और संवेदनात्मक झुकाव सामने आया है। मण्डल जी के काव्य-संसार का आरंभ दीर्घ अनुभव से उपजी कविता के रूप में चिह्नित किया गया है। उनकी कविता युवावस्था की भावुकता से नहीं, जीवन की लंबी यात्रा, गद्य-साधना, समाज-संघर्ष और लोकभाषिक संस्कार से उपजी है। आरंभिक पुस्तकों में बहुरंगी विषय, लोकधर्मी शब्द-संसार, समय-बोध, मिट्टी-पानी के बिंब, परिवार के संकेत और जीवन-जिजीविषा आये हैं। वही आगे चलकर संपूर्ण काव्यधारा का मूल आधार बनता है।

मिथिला की मिट्टी-पानी, भूगोल और प्रकृति की ओर उनका झुकाव अत्यंत गहरा है। मिट्टी उनके लिए मात्र धरती नहीं है। वह जन्म, अन्न, श्रम, स्मृति और पहचान का आधार है। पानी जीवन का साधन है, पर वही पानी बाढ़ और सूखा का संकट भी बनता है। पोखर सामुदायिक जीवन का केंद्र है; उसका सूखना लोकजीवन की सूखती संवेदना का प्रतीक बन जाता है। चौर किसान के धैर्य, जोखिम और श्रम-परीक्षा का बिंब है। ऋतु उनकी कविता में बाहरी मौसम मात्र नहीं, देह, श्रम और जीवन-संघर्ष का प्रत्यक्ष अनुभव है। इस तरह मण्डल जी का प्रकृति-बोध सौन्दर्य-वर्णन की सामान्य परंपरा से आगे बढ़कर कृषिजन्य जीवन, सामाजिक संतुलन, लोक-पर्यावरण और आत्मनिर्भरता के प्रश्न से जुड़ जाता है।

किसान, मजदूर और श्रमशील मनुष्य की ओर उनकी रचना का झुकाव मैथिली काव्यधारा में विशेष महत्त्व रखता है। किसान उनकी कविता में अन्नदाता मात्र नहीं है। वह संघर्षशील, श्रमशील, संकटग्रस्त, आत्मसम्मानयुक्त और जिजीविषु मनुष्य के रूप में उपस्थित है। मजदूर समाज के हाशिये की देह नहीं

है; वह जीवन-निर्माण की शक्ति है। श्रम उनके लिए बोझ नहीं, मानवीय गरिमा का आधार है। इसी कारण मण्डल जी की काव्यधारा लोकजीवन के उस श्रम-सत्य को केंद्र में लाती है, जिसकी उपेक्षा साहित्य और समाज, दोनों में प्रायः हुई है।

समाज की दरार, असंतुलन और प्रतिरोध की ओर मण्डल जी का झुकाव उनकी काव्य-दृष्टि के आलोचनात्मक पक्ष को स्पष्ट करता है। जाति, वर्ग, धन, प्रतिष्ठा, पाखंड, स्त्री का असम्मान, श्रम का अवमूल्यन, परिवार का विघटन, लोक-संस्कार की जड़ता और स्मृतिहीन आधुनिकता पर मण्डल जी प्रश्न उठाते हैं। पर उनका प्रतिरोध विनाशक नहीं। यह लोकभाषा में बोलता, समाज के भीतर से उठता और मनुष्य के विवेक को जगाता प्रतिरोध है। मण्डल जी समाज को तोड़ने की भाषा नहीं, समाज को पुनः सजग करने की भाषा गढ़ते हैं।

परिवार, स्त्री-संवेदना और लोक-संस्कार की ओर उनका झुकाव काव्यधारा का एक सूक्ष्म और महत्त्वपूर्ण आयाम है। परिवार उनके लिए निजी भावुकता मात्र नहीं, समाज की पहली नैतिक संरचना है। माँ श्रम, ममता, संस्कार और सहनशीलता का केंद्र है। बेटी समाज की दृष्टि की परीक्षा है। बहन का संबोधन असुरक्षा और आत्मीयता का द्वंद्व खोलता है। बहू, पत्नी, गृहस्थ स्त्री और सास-बहू का संबंध परिवार में विद्यमान श्रम-वितरण, न्याय-अन्याय और लोक-संस्कार की स्थिति सामने लाता है। मण्डल जी लोक-संस्कार का सार बचाते हैं, पर रूढ़ि और पाखंड की आलोचना करते हैं। इस संतुलन से उनकी स्त्री-संवेदना करुणामूलक होते हुए भी सामाजिक अर्थ प्राप्त करती है।

समय, मौसम और जीवन-परीक्षण का बोध मण्डल जी की काव्यधारा में अत्यंत सशक्त है। रात-दिन, साँझ-भोर, जेठ-माघ, अगहन-पूस, धूप-छाँह, बाढ़-सूखा, दिन घटना और साल बदलना, ये सब जीवन के समय-संकेत हैं। कृषिजन्य जीवन में मौसम सुविधा-असुविधा नहीं, अन्न, श्रम, ऋण, भूख, परिवार, परदेश और भविष्य का प्रश्न बनता है। मण्डल जी इस समय-बोध को दार्शनिक अमूर्तन के रूप में नहीं देखते। वे उसे लोकजीवन के देहगत अनुभव के रूप में व्यक्त करते हैं। समय उनके यहाँ मौन न्यायाधीश भी है, जो मनुष्य और समाज के व्यवहार के परिणाम सामने लाता है।

जीवन-जिजीविषा, मृत्यु-बोध और नैतिक साहस उनकी काव्यधारा का अन्तःस्वर है। उनकी कविता दुःख का विवरण अवश्य है, पर निराशा का विवरण नहीं। सूखा पोखर, मरा घाट, घटता दिन, भुतहाया मन, परती मिट्टी और अँधेरा, ये सब क्षय के बिंब हैं। पर उनमें पुनरारम्भ की आकांक्षा भी छिपी है। 'फेरो' उनके काव्य-मन का एक महत्त्वपूर्ण शब्द है। टूटने के बाद फिर उठना, मर-मरकर फिर जीना, सूखी धरती में फिर बीज डालना, समाज के अँधेरे में फिर विवेक खोजना, इन सबमें मण्डल जी की जीवन-पक्षधरता प्रकट होती है। मृत्यु-बोध उनके यहाँ जीवन-विमुखता नहीं, कर्म-बोध का कारण बनता है।

चतुर्थ खंड में भाषा, शिल्प, प्रतीक और काव्य-स्वर के विश्लेषण से स्पष्ट हुआ कि मण्डल जी की कविता की शक्ति मात्र कथ्य में नहीं, उसके अभिव्यक्ति-रूप में भी है। उनकी भाषा लोकजीवन के भीतर से उठी हुई भाषा है। उसमें कृषिजन्य शब्दावली, पारिवारिक संबोधन, पंचायती के प्रश्न, गाँव की बातचीत और श्रम की ताल उपस्थित है। हँसना-रोना, रग्गड़-घस्स, ध्वनि, आवृत्ति और लोक-लय उसे काव्यात्मक ऊर्जा देते हैं। यह भाषा सहज है, पर सतही नहीं। लोकधर्मी है, पर असंयमित नहीं। भावपूर्ण है, पर विचारहीन नहीं। इस भाषा द्वारा मण्डल जी लोकजीवन के अनुभव को साहित्यिक गरिमा देते हैं।

उनका प्रतीक-संसार भी अत्यंत विशिष्ट है। मिट्टी-पानी, पोखर-चौर, धान-बीज, पेड़-फूल, रात-दिन, जेठ-माघ, धार-सरिता, गंगा, कामधेनु, अकास, मन, घाट-घर, गाँव, परदेश और 'बान्ह-छेक' जैसे प्रतीक उनकी कविता में लोकजीवन से उपजते हैं। ये प्रतीक जीवन-दर्शन से जुड़े व्यापक अर्थ भी ग्रहण करते हैं। वे बाहर से आरोपित नहीं, बल्कि पाठक के परिचित संसार से उठते हैं। साथ ही, उन्हीं परिचित वस्तुओं और अनुभवों के भीतर निहित गहरे सामाजिक, नैतिक और मानवीय अर्थों को उद्घाटित करते हैं। इस प्रतीक-योजना में ठोस जीवनानुभव और गहरे वैचारिक अर्थ का सशक्त समन्वय दिखाई देता है।

काव्य-स्वर के स्तर पर मण्डल जी की काव्यधारा संवादधर्मी है। वे पाठक, समाज, अपने मन, किसान, स्त्री, गाँव, मिट्टी-पानी और समय से संवाद करते हैं। मृत्यु-बोध से भी उनका संवाद चलता है। संबोधन उनकी कविता को आत्मीय बनाता है। प्रश्न उसे विचारशील बनाता है। उलाहना उसे सामाजिक

बनाता है। आत्मसंवाद उसे नैतिक बनाता है। यह कविता ऊँचे आसन से दिया गया आदेश नहीं है। वह लोकजीवन के बीच चलती बातचीत का काव्यरूप है। इसी कारण मण्डल जी का काव्य-संसार केवल पढ़ा नहीं, सुना भी जाता है।

पंचम खंड में जीवन के झुकाव और रचना के झुकाव के बीच का साम्य स्पष्ट हुआ। मण्डल जी के जीवन में समाज-दृष्टि, श्रम-बोध, मिट्टी-पानी से लगाव, किसान की पक्षधरता, लोक-संस्कार का अनुभव, विवेक का आग्रह, आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय की चेतना विकसित हुई है। उनकी वही चेतना रचना में विषय, भाषा, प्रतीक, बिंब, संबोधन, प्रश्न, प्रतिरोध और जिजीविषा के रूप में व्यक्त हुई है। पर कविता जीवन की प्रतिलिपि नहीं, वह जीवन का कलात्मक पुनर्सृजन है। इस पुनर्सृजन में जीवन का अनुभव व्यापक मानवीय अर्थ प्राप्त करता है। यही मण्डल जी के काव्य-झुकाव की सबसे गहरी पहचान है।

मैथिली काव्य-परंपरा में मण्डल जी की विशिष्टता इस बात में है कि वे लोकजीवन को सजावटी पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि सच्चे साहित्य का केंद्र बनाते हैं। वे किसान और श्रमशील मनुष्य को गरिमा देते हैं। वे मिट्टी-पानी, पोखर, चौर, ऋतु और खेत को सामाजिक और प्रतीकात्मक अर्थ देते हैं। वे लोकभाषा को काव्यभाषा का सम्मान देते हैं। वे सामाजिक प्रतिरोध को घृणा या विनाश में नहीं, विवेक, संवाद और पुनर्निर्माण में बदलते हैं। वे परंपरा से जुड़ते हैं, पर परंपरा के रूढ़ रूप की पुनरावृत्ति नहीं करते। वे आधुनिक प्रश्न उठाते हैं, पर लोकमूलक जीवन से कटते नहीं। इस संतुलन से उनकी काव्यधारा मैथिली काव्य के लोक-यथार्थवादी, श्रम-केन्द्रित और सामाजिक-विवेकधर्मी स्वर के रूप में स्थापित होती है।

इस पूरे अध्ययन का निचोड़ यह है कि मण्डल जी का काव्य-संसार मात्र कविता-संग्रहों का समूह नहीं, बल्कि एक गहरी जीवन-दृष्टि का काव्यात्मक विस्तार है। इस दृष्टि में मिट्टी-पानी, श्रम, स्त्री का मौन दायित्व और किसान का कठिन धैर्य उपस्थित हैं। इसमें गाँव की आंतरिक दरारें हैं, समाज में खड़ी विभाजनकारी दीवारें हैं, मृत्यु-बोध है, 'फेरो' जीने की इच्छा है और मनुष्य के भीतर बची हुई नैतिक रोशनी है। इन सबको जोड़ने वाली काव्य-दिशा ही मण्डल

जी का मूल झुकाव है।

‘झुकाव का परीक्षण’ इसी झुकाव को चिह्नित करने, परखने और साहित्यिक रूप में स्थापित करने का प्रयास है। इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मण्डल जी की कविता लोकजीवन का केवल चित्र नहीं बनाती; वह लोकजीवन का अर्थ भी पूछती है। वह किसान के दुःख का लेखा भर नहीं रखती, बल्कि श्रम की गरिमा स्थापित करती है। वह समाज के दोष गिनाती मात्र नहीं, उसके भीतर सुप्त विवेक को भी जगाती है। वह स्त्री की पीड़ा सुनाती है, पर उसके साथ स्त्री के श्रम, दायित्व और मानवीय केंद्रीयता को भी चिह्नित करती है। वह प्रकृति का सौन्दर्य गाती जरूर है, पर मिट्टी-पानी के जीवन-मूल्य को भी समझाती है। वह मृत्यु-बोध से आँख नहीं चुराती, पर जीवन को कभी छोड़ती भी नहीं। इसी कारण उसकी काव्यधारा जीवन की कठिन धरती पर खड़ी लोकधर्मी नैतिक कविता बन उठती है।

अंततः मण्डल जी की काव्य-दृष्टि का मूल झुकाव मनुष्य के पक्ष में है। यह वह मनुष्य है, जो खेत में श्रम करता है, घर में संबंध सँभालता है, चौर में जोखिम उठाता है, पोखर के किनारे जीवन की आशा देखता है, पंचायती में सामाजिक प्रश्नों की आवाज सुनता है और परदेश में भी अपनी मिट्टी की स्मृति से बँधा रहता है। वह पारिवारिक अंतर्विरोधों से जूझता है, श्रम की थकान सहता है, सामाजिक अन्याय का सामना करता है और फिर भी जीने की जिद नहीं छोड़ता। इस मनुष्य को काव्य के केंद्र में लाना, उसकी भाषा में उसके प्रश्न उठाना, उसके दुःख में करुणा को पहचानना और उसके श्रम की गरिमा को प्रतिष्ठित करना ही मण्डल जी की काव्यधारा की मूल उपलब्धि है। ‘झुकाव का परीक्षण’ इसी उपलब्धि की आलोचनात्मक पड़ताल और साहित्यिक स्वीकृति है। ❑

परिशिष्ट

काव्य-पुस्तकों के संकेत, स्रोत और लेखन-क्रम:

इस परिशिष्ट का उद्देश्य जगदीश प्रसाद मण्डल जी की काव्य-पुस्तकों की पुस्तकवार आलोचनात्मक पुनरावृत्ति करना नहीं, बल्कि पाठक-सुविधा, स्रोत-परिचय और काव्य-यात्रा का संकेतात्मक क्रम प्रस्तुत करना है। मुख्य अध्ययन में मण्डल जी की काव्यधारा को झुकाव, प्रवृत्ति, भाषा-शिल्प, प्रतीक, समाज, किसान, मिट्टी-पानी, परिवार, समय और जीवन-जिजीविषा के आधार पर परखा गया है। इस परिशिष्ट में उस आलोचना को दोहराया नहीं गया है; केवल ऐसी आधार-सूचना दी गयी है, जिससे पाठक बारहों काव्य-पुस्तकों का स्थान, स्वरूप और विषयगत संकेत सहज रूप से समझ सकें।

यहाँ लेखन-क्रम का संकेत मुख्यतः उपलब्ध मुद्रित स्रोतों में उल्लिखित प्रथम प्रकाशन-वर्ष के आधार पर व्यवस्थित है। अलग-अलग कविता या गीत की स्वतंत्र रचना-तिथि सभी जगह उपलब्ध नहीं है; इसलिए इस परिशिष्ट में पुस्तक-स्तर के काल-क्रम, संस्करण-सूचना और विषयगत संकेत को प्रमुखता दी गयी है। इस दृष्टि से यह परिशिष्ट स्रोत-सहायक खंड है, आलोचनात्मक अध्याय नहीं।

1. ‘इन्द्रधनुषी अकास’

विधागत स्वरूप: मैथिली कविता-संग्रह

प्रथम प्रकाशन-वर्ष: 2013

उपलब्ध आधार-स्रोत: चतुर्थ संस्करण, 2023; पुनर्मुद्रण 2024; पल्लवी प्रकाशन, बेरमा/निर्मली; ISBN: 978-93-88811-39-2

विषयगत संकेत: 'इन्द्रधनुषी अकास' मण्डल जी की काव्यधारा के आरंभिक बहुरंगी स्वरूप का महत्त्वपूर्ण संकेत है। इस संग्रह में मन-जीवन, मिथिला-प्रकृति, ऋतु-मिट्टी, गंगा-गोधन, गरीबी, पुरुषार्थ, आशा और नयी दुनिया जैसे विविध विषय एक साथ उपस्थित हैं। संग्रह का शीर्षक स्वयं जीवन के बहुरंग, अकास के विस्तार और धरती-पानी से जुड़े जीवन-प्रकाश का संकेत देता है। इस पुस्तक में आरंभिक काव्य-संसार का स्वर प्रयोगशील, लोकानुभव-सम्बद्ध और विषयगत रूप से विस्तृत रूप में उभरता है।

अध्ययन में उपयोगी प्रमुख रचना-संकेत: 'मन-मणि', 'चल रे जीवन', 'सासु-पुतोहु वार्ता', 'मिथिला केहेन', 'मौसमक मुस्की', 'आशा', 'बीआ', 'बाट', 'गंगा नहाइ', 'गोधन पूजा', 'माटिक फूल', 'नव दुनियाँ', 'पुरुषार्थ', 'केना मेटत गरीबी' आदि।

2. 'राति-दिन'

विधागत स्वरूप: मैथिली कविता-संग्रह

प्रथम प्रकाशन-वर्ष: 2013

उपलब्ध आधार-स्रोत: चतुर्थ संस्करण, 2023; पुनर्मुद्रण 2024; पल्लवी प्रकाशन, बेरमा/निर्मली; ISBN: 978-93-88811-40-8

विषयगत संकेत: 'राति-दिन' मण्डल जी के काव्य की ओर मुड़ने की आत्मस्वीकारोक्ति और समय-द्वंद्व का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इस संग्रह में राति-दिन, साँझ-भोर, धूप-छाँह, गरीबी, माँ-पत्नी, पौरुष और आत्ममंथन के विविध स्वर उपस्थित हैं। काव्य-लेखन का आरंभिक आत्मबोध इस पुस्तक को विशेष महत्त्व देता है। इस संग्रह में जीवन को अँधेरे-उजाले, संघर्ष-विराम, थकान-आशा और समय के निरंतर प्रवाह के बीच देखा गया है।

अध्ययन में उपयोगी प्रमुख रचना-संकेत: 'मनमनियाँ', 'संघर्ष', 'साँझ-भोर', 'समय', 'जिनगीक मोड़', 'धूप-छाँह', 'माए', 'घरक लोटिया बुड़ले अछि',

‘गरीबी’, ‘किछु सीखू किछु करू’, ‘पत्नी’, ‘पौरुष’, ‘अपनेपर’, ‘डायरी’ आदि।

3. ‘तीन जेठ एगारहम माघ’

विधागत स्वरूप: मैथिली गीत-संग्रह

प्रथम प्रकाशन-वर्ष: 2013

उपलब्ध आधार-स्रोत: चतुर्थ संस्करण, 2023; पल्लवी प्रकाशन, बेरमा/निर्मली; ISBN: 978-93-88811-41-5

विषयगत संकेत: इस पुस्तक में गीतात्मक लय के साथ ऋतु-देह, श्रम-समय, ताप-ठंड, आशा-निराशा और जीवन-संघर्ष का अनुभव विशेष रूप से उभरता है। शीर्षक स्वयं जेठ के ताप और माघ की कठोर ठंड के माध्यम से जीवन-परीक्षा का प्रतीकात्मक संकेत देता है। इस संग्रह में मौसम, पेड़, देह, पसीना, पेट का ताप, मन की पीड़ा और जीवन का आध्यात्मिक-सामाजिक संघर्ष गीतात्मक रूप में उपस्थित है।

अध्ययन में उपयोगी प्रमुख रचना-संकेत: ‘गाछक रंग बदैल रहल छै’, ‘मुँहक हँसी केहेन’, ‘गुमकीमे वौआए’, ‘भूत बनि भुतियाएल’, ‘दीनक दिन केना’, ‘जाल समाज’, ‘मीत यौ, देहक पानि’, ‘मनक बेथा’, ‘पकड़ समय’, ‘पेटक ताप’, ‘धार संग नाह’, ‘मन मशीन’, ‘जिनगीक कुंज’, ‘सत-चित’ आदि।

4. ‘सुखाएल पोखरिक जाइठ’

विधागत स्वरूप: मैथिली गीत-संग्रह

प्रथम प्रकाशन-वर्ष: 2013

उपलब्ध आधार-स्रोत: चतुर्थ संस्करण, 2023; पुनर्मुद्रण 2024; पल्लवी प्रकाशन, बेरमा/निर्मली; ISBN: 978-93-88811-42-2

विषयगत संकेत: ‘सुखाएल पोखरिक जाइठ’ मण्डल जी के प्रतीक-संसार की एक महत्त्वपूर्ण आधार-पुस्तक है। सूखा पोखर, जाइठ, धार, जीवन

का बहाव, चोरकट चाल, गिरता घर, अँधा जाल और पुनः जीने की जिद के अनेक संकेत इस संग्रह में उपस्थित हैं। शीर्षक में निहित पोखर-बिंब सामुदायिक जीवन, जल-संस्कृति, पर्यावरणीय क्षय और समाज की सूखती संवेदना के प्रतीक के रूप में अत्यंत प्रभावी है।

अध्ययन में उपयोगी प्रमुख रचना-संकेत: 'धार बीच', 'फेरो हम', 'चोरकट चालि', 'ससुरामे जा कऽ धीया', 'जिनगीक ताक', 'सुखल पोखरिक', 'जड़ि जंजालक', 'गिरैत घर', 'अन्हर जाल', 'हर हलक' आदि।

5. 'सरिता'

विधागत स्वरूप: मैथिली काव्य-संग्रह

प्रथम प्रकाशन-वर्ष: 2013

उपलब्ध आधार-स्रोत: चतुर्थ संस्करण, 2023; पुनर्मुद्रण 2024; पल्लवी प्रकाशन, बेरमा/निर्मली; ISBN: 978-93-88811-43-9

विषयगत संकेत: 'सरिता' में प्रवाह, पानी-धार, परदेश, जीवन-समाज, अगहन-खेत, मिट्टी की गन्ध, वेद-भेद, जेठ, समय और लोक-संबंध के विविध बिंब उपस्थित हैं। सरिता-बिंब जीवन की गतिशीलता, पानी-संस्कृति, यात्रा, प्रवाह और परिस्थिति-परिवर्तन का संकेत देता है। इस पुस्तक में पानी और प्रवाह का बिंब मात्र प्राकृतिक नहीं, अस्तित्वगत और सामाजिक अर्थ ग्रहण करता है।

अध्ययन में उपयोगी प्रमुख रचना-संकेत: 'परदेश जेतै', 'ओज ओझरी', 'पानि बीच', 'बंसी धार', 'जिनगी जखन', 'राति-दिन', 'हरबाह', 'हर हलक', 'सालक विदाइ', 'समाज सजल', 'अबिते अगहन', 'उपजल खेत', 'वेद-भेद', 'जेठुआ गरे', 'समय केर' आदि।

6. 'गीतांजलि'

विधागत स्वरूप: मैथिली गीत-संग्रह

प्रथम प्रकाशन-वर्ष: 2013

उपलब्ध आधार-स्रोत: चतुर्थ संस्करण, 2023; पुनर्मुद्रण 2024;

पल्लवी प्रकाशन, बेरमा/निर्मली; ISBN: 978-93-88811-44-6

विषयगत संकेत: 'गीतांजलि' में गीतात्मकता, गाँव का अनुभव, पारिवारिक संवेदना, माँ-बहन की आत्मीय उपस्थिति, समय और समाज के प्रश्न, अँधेरे-उजाले का द्वंद्व, गाँव की स्मृति और लोक-संबोधन का स्वाभाविक विस्तार दिखाई देता है। इस संग्रह में 'गाम' मात्र भौगोलिक स्थल नहीं, मातृभूमि, स्मृति, संस्कार और आत्मीयता के रूप में उपस्थित है। पारिवारिक संबोधन और लोक-संबंध की भाषा इस पुस्तक की विशेष पहचान है।

अध्ययन में उपयोगी प्रमुख रचना-संकेत: 'हाल-बेहाल', 'दिन घटतै', 'गामसँ किएक', 'संग जिनगी', 'सुन मैया गे', 'ओस बनि', 'बाढ़िमे सभ', 'मीत यौ अहींकेँ कहै छी', 'हे बहिनी', 'हे बहिना, हे दीदी', 'चलू उचितपुर देश', 'बुधिये बाट', 'घात लगौने' आदि।

7. 'सतबेध'

विधागत स्वरूप: मैथिली काव्य-संग्रह

प्रथम प्रकाशन-वर्ष: 2018

उपलब्ध आधार-स्रोत: तृतीय संस्करण, 2023; पल्लवी प्रकाशन, बेरमा/निर्मली; ISBN: 978-93-88811-45-3

विषयगत संकेत: 'सतबेध' में आत्मबल, जीवन-धार, मिट्टी, किसान, संघर्ष, समाज, गुण-अवगुण, श्रम, पैसे का मूल्य और नैतिक विवेक के विविध रूप उपस्थित हैं। इस पुस्तक में मण्डल जी की विचारधारा अधिक स्पष्ट रूप से श्रम, आत्मनिर्भरता, जीवन-संघर्ष और सामाजिक आलोचना की ओर उन्मुख दिखाई देती है। 'अपन बल' और 'जीवन धार' शीर्षक रचनाओं के संकेत उनके वैचारिक झुकाव के संक्षिप्त सूत्र के रूप में ग्रहणीय हैं।

अध्ययन में उपयोगी प्रमुख रचना-संकेत: 'अपन बल', 'जीवन धार', 'खढ़ पोस पानि', 'परता माटि', 'जीवन', 'जिनगीक बीच जिनगी', 'दिन रातिक खेल', 'सतबेध', 'गुरुत्तर', 'जिनगीक मोड़', 'सुमति-कुमति', 'किसानक देश भारत', 'वञ्चित धार', 'पाइक मोल' आदि।

8. 'चुनौती'

विधागत स्वरूप: मैथिली कविता-संग्रह

प्रथम प्रकाशन-वर्ष: 2019

उपलब्ध आधार-स्रोत: द्वितीय संस्करण, 2023; पुनर्मुद्रण 2024; पल्लवी प्रकाशन, बेरमा/निर्मली; ISBN: 978-93-88811-37-8

विषयगत संकेत: 'चुनौती' में जीवन का संघर्ष, मानव-गुण, चास-बास, गाँव का संकट, पानी, मरुभूमि, सामाजिक विडम्बना, परदेश, अँधेरा, नैतिक परीक्षा और जीने के संघर्ष के अनेक रूप व्यक्त हैं। शीर्षक स्वयं जीवन की अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच मनुष्य के सक्रिय उत्तरदायित्व का संकेत देता है। इस पुस्तक में प्रश्नाकुलता, प्रतिरोध और नैतिक साहस का स्वर विशेष रूप से प्रखर है।

अध्ययन में उपयोगी प्रमुख रचना-संकेत: 'चुनौती', 'मानव गुण', 'छुटि गेल', 'मरल घाट', 'बीघा भरि चास-बास', 'फँसरी', 'विचलित मन', 'अखड़ा जिनगी', 'परदेशी', 'अन्हराएल छी', 'ओ दिन', 'दूजा भाव', 'जीबैले लड़ए पड़ैछै', 'पगलखना' आदि।

9. 'रहसा चौरी'

विधागत स्वरूप: मैथिली काव्य-संग्रह

प्रथम प्रकाशन-वर्ष: 2019

उपलब्ध आधार-स्रोत: द्वितीय संस्करण, 2023; पल्लवी प्रकाशन, बेरमा/निर्मली; ISBN: 978-93-88811-38-5

विषयगत संकेत: 'रहसा चौरी' मण्डल जी की किसान-केन्द्रित, चौर-केन्द्रित और मिथिला की मिट्टी-पानी-सम्बद्ध काव्यधारा की अत्यंत महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। इस संग्रह का आरंभिक आलेख 'रहसा चौरीक राग-विराग' मण्डल जी की रचना को मिथिला की मिट्टी-पानी की रचना के रूप में पहचान देता है।

बाढ़-चौर, धान-धनकटनी, किसान, महँगाई-बेरोजगारी, ठनका, चिकनी मिट्टी और श्रमशील जीवन का कठोर यथार्थ इस पुस्तक में विशेष रूप से व्यक्त है।

अध्ययन में उपयोगी प्रमुख रचना-संकेत: 'बाढ़िक सनेस', 'अगो-लोढ़ा', 'हथियाक झटकी', 'रहसा चौरी', 'बेरोजगारी', 'लीढ़ी पोखैर', 'बकरी भेराड़ी', 'महगी', 'चौरीक धनकटनी', 'किसान', 'टुटैत जिनगी', 'बेथा', 'ठनका', 'चिक्कैन माटि', 'एकैसम सदीक देश', 'ऐ पढ़बसँ मुरुखे रहितौं' आदि।

10. 'कामधेनु'

विधागत स्वरूप: मैथिली काव्य-संग्रह

प्रथम प्रकाशन-वर्ष: 2020

उपलब्ध आधार-स्रोत: द्वितीय संस्करण, 2023; पुनर्मुद्रण 2024; पल्लवी प्रकाशन, बेरमा/निर्मली; ISBN: 978-93-88811-46-0

विषयगत संकेत: 'कामधेनु' में मिथकीय प्रतीक, श्रम, आत्मनिर्भरता, जीवन का कुंज, सत-चित, पोखर, परिवार-बेटी, घर-घर, रोग-बेमारी, प्रकृति, सामुदायिकता और मनुष्य के कर्मशील अस्तित्व के संकेत मिलते हैं। कामधेनु-प्रतीक इस पुस्तक में चमत्कार नहीं, कर्म, धीरज, श्रम, सेवा और जीवन-निर्वाह का लोकधर्मी अर्थ ग्रहण करता है।

अध्ययन में उपयोगी प्रमुख रचना-संकेत: 'कामधेनु', 'जिनगीक कुंज', 'सत-चित', 'पड़िते पएर पवन पोखैर', 'अहाँ किएक रूसल छी', 'घट-घट घोंट', 'दुनियाँ घोड़ाएल छै निशाँमे', 'हलचल जिनगी हलैस-कलैश', 'बेटी किए', 'सिरजन सिर', 'मारी-बेमारी', 'गोधूलि-बेल', 'दीनक दोख', 'संगे-संग', 'आभा मण्डल' आदि।

11. 'मन मथन'

विधागत स्वरूप: मैथिली काव्य-संग्रह

प्रथम प्रकाशन-वर्ष: 2020

उपलब्ध आधार-स्रोत: द्वितीय संस्करण, 2023; पुनर्मुद्रण 2024;

पल्लवी प्रकाशन, बेरमा/निर्मली; ISBN: 978-93-88811-47-7

विषयगत संकेत: 'मन मथन' में समाज, मन, नज़र, परिवार, माँ, इच्छा, चास-बास, ढहा गाँव, सघन वन, मानवीय धारण और आत्ममंथन के विविध स्वर उपस्थित हैं। 'मन मथन' शीर्षक स्वयं मन के मंथन, आत्मालोचना, सामाजिक प्रश्नों और नैतिक विवेक की ओर संकेत करता है। इस पुस्तक में समाज का खेल, नज़र का न बदलना, पारिवारिक अंतर्विरोध और चास-बास का संकट विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करते हैं।

अध्ययन में उपयोगी प्रमुख रचना-संकेत: 'संग जिनगी खेल होइत एलैए', 'नजैर कहाँ बदलल', 'देखि टराटक पड़ल रहै छी', 'माइक माइपन', 'इच्छा : 1', 'इच्छा : 2', 'मन मथनी', 'केकरा कहब नवदिन सगुन?', 'अप्पन दिन कहिया औतै', 'बलकस चास', 'चास-बास', 'ढहल गाम', 'सघन वन', 'मानब धारण धड़ैत एलैए' आदि।

12. 'अकास गंगा'

विधागत स्वरूप: मैथिली गीत-संग्रह

प्रथम प्रकाशन-वर्ष: 2020

उपलब्ध आधार-स्रोत: द्वितीय संस्करण, 2023; पुनर्मुद्रण 2024; पल्लवी प्रकाशन, बेरमा/निर्मली; ISBN: 978-93-88811-48-4

विषयगत संकेत: 'अकास गंगा' में दृष्टि-मन, समाज की विभाजनकारी सीमाएँ और रूढ़िगत बंधन, पोखर, नया बास, बहन, समय-साल, मान-सम्मान, खेल-विचार, स्वतंत्रता, तनाव, पीड़ित रीति और सुफल कार्य के अनेक गीतात्मक संकेत उपस्थित हैं। अकास और गंगा मिलकर ऊर्ध्वता, प्रवाह, पवित्रता, विराटता और जीवनदायिनी शक्ति का संयुक्त प्रतीक बनाते हैं। इस संग्रह में संवादधर्मी संबोधन, सामाजिक आलोचना और लोकभाषिक गीतात्मकता विशेष रूप से सशक्त हैं।

अध्ययन में उपयोगी प्रमुख रचना-संकेत: 'नजैर-नजैरमे तफरका भैया', 'अपने मन ठकैए', 'केकरो गारि सुगारि', 'साँझ-भोर', 'समाजक बान्ह-छेक',

‘ओइ पोखरिक मानियैँ की?’, ‘नवका बास’, ‘हे बहिना केनाकऽ जेबै ओइ घरिया’, ‘मनक फूल’, ‘समय-साल’, ‘संग मान-समान’, ‘आबो कनी विचारू’, ‘समय केर’, ‘आनक बोझ’, ‘टेनशन बीच पड़ल छी’, ‘सुफल काज’ आदि।

काव्य-पुस्तकों का संकेतात्मक काल-क्रम

2013: ‘इन्द्रधनुषी अकास’, ‘राति-दिन’, ‘तीन जेठ एगारहम माघ’, ‘सुखाएल पोखरिक जाइठ’, ‘सरिता’, ‘गीतांजलि’

2018: ‘सतबेध’

2019: ‘चुनौती’, ‘रहसा चौरी’

2020: ‘कामधेनु’, ‘मन मथन’, ‘अकास गंगा’

इस कालक्रम से मण्डल जी की काव्ययात्रा के क्रमिक विकास का संकेत मिलता है। 2013 की काव्य-पुस्तकों में बहुरंगी आरंभिक प्रयोगों के साथ गीतात्मकता, समय-बोध, मिट्टी-पानी, परिवार, गाँव और आत्ममंथन के स्वर दिखाई देते हैं। 2018 में ‘सतबेध’ के साथ आत्मबल, श्रम, जीवन-धार, किसान-जीवन और नैतिक विवेक की दिशाएँ अधिक स्पष्ट होती हैं। 2019 में ‘चुनौती’ और ‘रहसा चौरी’ जीवन-संघर्ष, सामाजिक प्रतिरोध, चास-बास, चौर, बाढ़, किसान और श्रमशील मनुष्य के यथार्थ को अधिक तीव्रता के साथ सामने लाती हैं। 2020 की ‘कामधेनु’, ‘मन मथन’ और ‘अकास गंगा’ में प्रतीक, आत्ममंथन, सामाजिक विभाजन और रूढ़िगत बंधन, परिवार, दृष्टि-विवेक तथा लोक-संवादधर्मी गीतात्मकता जैसे विषयगत और शिल्पगत पक्षों का अधिक व्यापक विकास दिखाई देता है।

❑❑❑
❑❑
❑

Notes